chapter-5

5

==

:: पंचम अध्याय ::

:: दलित-जीवन की समस्याएं (1) ::

==

A *Dhaval* PRODUCT A'BAD

: पंचम् अध्याय :

: दलित-जीवन की समस्याएं (1) :

प्रास्ताविक :

उपन्यास यथार्थ की विधा है । यथार्थधर्मिता ही उसका प्राण-तत्त्व है । जिस विधा में यथार्थ का इतना आग्रह हो, बहुत स्वाभाविक है कि उसमें मानव-जीवन तथा मानव समाज की समस्याएं अन्तर्निहित हों । जीवन एक संघर्ष है । उसमें कदम-कदम पर मनुष्य को अपने अस्तित्त्व के

लिए जूझना पड़ता है । इस संघर्ष की स्थिति के कारण ही नाना प्रकार की समस्याएं मनुष्य के सम्मुख उपस्थित होती हैं । ये समस्याएं भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं -- जैसे - सामाजिक समस्याएं, आर्थिक समस्याएं, पारिवारिक समस्याएं, धार्मिक समस्याएं, नैतिक समस्याएं, मनोवैज्ञानिक समस्याएं आदि आदि । परन्तु यहां एक बात ध्यान में रहे कि ये समस्याएं परस्पर एक-दूसरे से जुड़ी हुई होती हैं । कई बार देखा गया है कि किसी एक प्रकार की समस्या का उत्स या मूल किसी दूसरे प्रकार की समस्या में पाया जाता है । वस्तुतः समस्याओं का वर्गीकरण तो केवल अध्ययन की सुविधा के लिए है, अन्यथा ये समस्याएं एक-दूसरे में गुंथी हुई और एक-दूसरे में उलझी हुई होती हैं । इनको अलग-अलग करके देखना आसान या सहज नहीं है ।

प्रस्तुत बात को समझने के लिए उदाहरण के तौर पर हम "धरती धन न अपना" के काली की एक समस्या को ले सकते हैं । प्रस्तुत उपन्यास का नायक काली अपनी ही जाति की ज्ञानो नामक एक युवती को चाहता है । काली और ज्ञानो एक ही जाति के हैं, परन्तु यहां भी जाति के भीतर उप-जातियों में जातिगत ऊंच-नीच का संस्तरण (Hierarchy) पाई जाती है । काली और ज्ञानों की जातियों में "रोटी-व्यवहार" तो है, परन्तु "बेटी-व्यवहार" नहीं है । जैसे रबारी, भरवाड, अहीर, चारण आदि जातियों में रोटी-व्यवहार" होता है, परन्तु "बेटी-व्यवहार" नहीं होता । अर्थात, वे एक-दूसरे के यहां भोजन कर सकते हैं, परन्तु शादी-ब्याह का व्यवहार उन्हें अपने निश्चित "गोल" में ही करना पड़ता है ।

इस संदर्भ में डॉ० के. एम. पणिक्कर ने कहा है --" विचित्र बात यह है कि स्वयं अछूतों के भीतर एक पृथक् जाति के समान संगठन था । सवर्ण हिन्दुओं के समान उनमें भी बहुत उच्च और निम्न स्थितिवाली उप-जातियों का संस्तरण था, जो एक-दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करती थी ।" [1]

वस्तुतः अपनी जातिगत ऊंच-नीच की भावना को उचित तथा न्याय-संगत ठहराने के लिए समाज के ठेकेदारों ने निम्न वर्ग के लोगों में भी ऊंच-नीच की यह दरार डाल दी थी, ताकि ये लोग कभी संगठित होकर अन्याय और अत्याचार का सामना न कर सके । ऊंच-नीच के ख्यालों के साथ वे भी परस्पर एक-दूसरे क से लड़ते-झगड़ते रहे ।

यद्यपि काली और ज्ञानो एक ही जाति के हैं, परन्तु उनकी उपजातियां भिन्न हैं । अतः वे वैवाहिक सूत्र में नहीं बंध सकते । काली और ज्ञानो परस्पर चाहते हैं । चाहत का यह व्यापार सीमाओं को लांघ चुका है और उनमें शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित हो चुके हैं । ज्ञानों को काली से गर्भ रहता है । काली ज्ञानों से विवाह करना चाहता है, परन्तु उसके समाज के लोग उसमें बाधाएं उपस्थित करते हैं । मंगू काली को अपना दुश्मन समझता है, अतः वह अपनी मां को चढ़ाता है । ज्ञानो की मां जस्तो इस विवाह के सख्त खिलाफ हो जाती है । काली ज्ञानों से विवाह करने के लिए ईसाई धर्म अंगीकृत करने के लिए भी तैयार हो जाता है । परन्तु ज्ञानों बालिग नहीं है, अतः पादरी धर्म-परिवर्तन की छूट नहीं देता । ज्ञानों की मां जस्सो ज्ञानो को जहर देकर मार डालती है । काली ज्ञानों के प्रेम में विक्षिप्त-सा हो जाता है और पुनः शहर की ओर भाग जाता है ।

अब यहां प्रत्यक्षतः तो समस्या सामाजिक प्रकार की दिखती है, परन्तु उसमें दूसरी अनेक प्रकार की समस्याएं अनुस्यूत हैं । काली शहर से कुछ कमाकर आया है, अतः उसकी स्थिति दूसरे दलित वर्ग के युवकों से भिन्न प्रकार की ह । अतः शुरू में ज्ञानो की मां ज्ञानों और काली के सम्बन्धों में ढील देती है । परन्तु काली की अच्छी खासी रकम "पक्का मकान बनवाने में खर्च हो जाती है । कुछ बचे-खुचे रूपये चोरी हो जाते हैं । काली पुनः खेत-मजदूर वाली स्थिति में आ जाता है । काली यदि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होता, तो जातिगत प्राचीरों को फांदने में सफल

हो जाता, क्योंकि कहावत है -"समरथ को नहिं दोष गोसाईं" । परन्तु काली आर्थिक दृष्टि से समर्थ नहीं है, अतः जस्सो की मां ज्ञानो के विवाह के लिए प्रस्तुत नहीं होती । इस प्रकार इस सामाजिक समस्या के मूल में आर्थिक समस्या भी है ।

काली की इस आर्थिक दुरावस्था के पीछे काली की मनोवैज्ञानिक कुंठाएं कारणभूत हैं । काली में जातिगत लघुताग्रंथि {Inferiority Complex} है । इस लघुताग्रंथि के कारण घोड़ेवाहा गांव के चौधरियों को वह "दिखा देना चाहता" है । इस "दिखा देने" की भावना के कारण ही वह पक्का मकान बनवाने की सोचता है । काली के स्थान पर यदि कोई सवर्ण जाति का युवक होता तो अपनी आर्थिक सद्धरता का लाभ उठाते हुए, कमाये हुए रूपयों में से कोई दूसरा कारोबार शुरू करके रूपयों के जरिये कमाने की प्रवृत्ति में जुट जाता और बहुत सारे रूपये कमाने के बाद उन रूपयों में से एक छोटी-सी रकम अलग करके मकान बनवाने की सोचता ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि काली की आर्थिक दुरावस्था का कारण उसके मन नें चौधरियों के प्रति जो रोष और गुस्सा है वह है । अभिप्राय यह कि कारण मनोवैज्ञानिक है । इस प्रकार एक ही समस्या दूसरी समस्याओं के कई-कई छोरों से संलग्नित होती है ।

प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम दलित वर्ग से संलग्नित सामाजिक पारिवारिक तथा आर्थिक समस्याओं के संदर्भ में अपना अध्ययन प्रस्तुत करने की दिशा में अग्रसरित रहेगा ।

{1} सामाजिक समस्याएं :---

पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि दलित जातियों पर कई प्रकार की सामाजिक निर्योग्यताएं {Social disabilities} थोपी गयी है । अस्पृश्य जातियों के सामाजिक सम्पर्क पर एक प्रकार की रोक लगा दी गई थी । वे सभा-सम्मेलनों , गोष्ठियों, पंचायतों, उत्सवों

एवं सामाजिक समारोहों में भाग नहीं ले सकते थे । कई स्थानों पर तो उनकी छाया तक को अस्पृश्य माना जाता था । उनको सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की आज्ञा नहीं थी क्योंकि बहुत से सवर्ण हिन्दुओं को उनके दर्शन मात्र से अपवित्र होने की आशंका रहती थी । दक्षिण भारत में कई स्थानों पर तो उनको सड़कों पर चलने का अधिकार भी नहीं था । उनको तथा छात्रावासों में रहने नहीं दिया जाता था । उच्च जाति के द्वारा जिन चीज-वस्तुओं का उपयोग होता था, उनका उपयोग वे नहीं कर सकते थे । अच्छे वस्त्र एवं सोने के आभूषण नहीं पहन सकते थे । तांबा , पित्तल के बर्तनों का उपयोग नहीं कर सकते थे । धोबी उनके कपड़े नहीं धोते थे, नाई उनके बाल नहीं बनाते थे और कहार उनका पानी नहीं भरते थे । एक पृथक समाज के रूप में उनको रहना पड़ता था । किसी एक व्यक्ति के स्थान पर समूचे गांव या नगर के दासता का भार उन्हें ढोना पड़ता था । जघन्य प्रकार के कार्य करने के लिए उनको विवश किया जाता था । इन निर्योग्यताओं के कारण दलित जातियों में हमें कई प्रकार की सामाजिक समस्याएं मिलती हैं ।

﴾1﴿ अस्पृश्यता की समस्या :---

अस्पृश्यता की समस्या के कारण एक पृथक समाज के रूप में उनको रहना पड़ता था । प्रायः उनके मुहल्ले, गांव या नगर के बाहर होते थे । उनके मुहल्लों को चमादड़ी, चमरौटी, चमरवास, डूम्योल जैसे नाम दिये गये हैं । यद्यपि गांवों में ब्राह्मण, राजपूत जैसी जातियों के भी कई बार अलग-अलग मुहल्ले पाये जाते हैं, तथापि उनके लिए किसी प्रकार की बाध्यता नहीं होती थी । उदाहरणतया किसी ब्राह्मण के घर के पास यदि कोई राजपूत या यादव अपना घर बना सकता था, परन्तु अस्पृश्य जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों के मकानों के पास अपना मकान नहीं बना सकते थे । अब शनैः शनैः नगरों में से यह दूषण दूर हो रहा है, परन्तु अनेक गांवों

में आज भी वही स्थिति पाई जाती है ।

अस्पृश्यता के कारण उनका मंदिर प्रवेश निषिद्ध माना गया है । प्रेमचन्द के उपन्यास "कर्मभूमि" में अछूतों की समस्या को लिया गया है । यह उपन्यास अनेक दृष्टियों से एक निराला उपन्यास है । इसे उन्होंने पांच भागों में विभक्त किया है । प्रथम भाग में न तो अछूत पात्र है और न किसी अछूतों की किसी समस्या को लिया गया है । इसमें उपन्यास के नायक अमरकांत के निजी पारिवारिक जीवन की कथा है । परन्तु यहां लेखक ने बड़ी ही कुशलता से धर्म तथा अछूत-संबंधी अमर के दृष्टि-कोण को स्पष्ट किया है -- "वह धर्म के पीछे लाठी लेकर दौड़ने लगा । धन के संबंध का उसे बचपन से ही अनुभव होता आता था । धर्म-बंधन उससे कहीं कठोर, कहीं असह्य, कहीं निरर्थक था । धर्म का काम संसार में मेल और एकता पैदा करना होना चाहिए । यहां धर्म ने विभिन्नता और द्वेष पैदा कर दिया है । क्यों खान-पान में, रस्म-रिवाज में धर्म अपनी टांगें अड़ाता है ? मैं चोरी करूं, खून करूं, धोखा दूं धर्म मुझे अलग नहीं कर सकता । अछूत के हाथ से पानी भी लूं, धर्म छू-मंतर हो गया । अच्छा धर्म है । हम धर्म से बाहर किसी से आत्मा का संबंध भी नहीं कर सकते । आत्मा को भी धर्म ने बांध रखा है ? यह धर्म नहीं, धर्म का कलंक है ।"[2]

अतः इस उपन्यास में अमरकांत, डॉ० शान्ति कुमार, सुखदा आदि पात्र अछूतों की समस्या को लेकर जूझते हैं । ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में अमर जहां पाठशाला स्थापित करके उन्हें शिक्षित एवं संस्कारित करने का यत्न करता है, नगरीय परिवेश में अछूतों के मंदिर-प्रवेश की समस्या को लिया गया है । मंदिर-प्रवेश में अछूतों की वर्जना, सामाजिक अन्याय और विषमता का मूर्तिमंत रूप है । इस संदर्भ में "मंदिर" नाम से उनकी एक कहानी भी उपलब्ध होती है । "कर्मभूमि" में इस समस्या को उन्होंने व्यापक रूप से उठाई है । उपन्यास के एक पात्र डॉ० शांतिकुमार अछूतों को व्याख्यान देते हुए कहते हैं --" क्या तुम ईश्वर के घर से गुलामी का बीड़ा

लेकर आये हो ? तुम तन-मन से दूसरों की सेवा करते हो । पर तुम गुलाम हो । तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं । तुम समाज की बुनियाद हो । तुम्हारे ही ऊपर समाज खड़ा है, पर तुम अछूत हो । तुम मंदिरों में नहीं जा सकते । ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवा और कहां हो सकती है ?... तुम्हारा बस उस समय तक कुछ नहीं है, जब तक तुम समझते हो कि तुम्हारा बस नहीं है । मंदिर किसी एक आदमी या समुदाय की चीज नहीं है । वह हिन्दू मात्र की चीज है । यदि तुम्हें कोई रोकता है तो वह उसकी जबर्दस्ती है । मत हलो उस मंदिर के द्वार से, चाहे तुम्हारे ऊपर गोलियों की वर्षा ही क्यों न हो । तुम जरा-जरा सी बात के पीछे अपना सर्वस्व गंवा देते हो, जान दे देते हो, यह तो धर्म की बात है । धर्म की रक्षा सदा प्राणों से हुई है और प्राणों से होगी ।" [3]

मंदिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह होता है । गोलियां चलती हैं । कुछ अछूत मारे जाते हैं । अछूतों के इस वीरतापूर्ण बलिदान से सवर्णों का हृदय-परिवर्तन हो जाता है । अमरकांत सबके लिए मंदिर के द्वार खुल जाने की घोषणा करते हैं । वीरगति पाने वालों के क्रिया-कर्म का आयोजन किया जाता है । इसक्ष प्रकार मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह सफल होता है ।

"गोदान" उपन्यास में प्रेमचन्द जी अछूतों की सामाजिक - धार्मिक समस्याओं का विशद चित्रण करते हैं । पंडित दातादीन के पुत्र मातादीन सिलिया चमारिन की जवानी का सुख भोगते हैं । सिलिया उसकी ख रखैल जरूर है, लेकिन उसकी गति केवल शारीरिक सहवास तक ही सीमित है । वह सहभोज की अधिकारिणी नहीं है । मातादीन और उनके पिता पं. दातादीन अपने भोजन की पवित्रता बनाए हुए हैं, दातादीन के शब्दों में ---" सिलिया हमारी चौखट नहीं लांघ पाती, चौखट, बरतन - झाड़े छूना तो दूर की बात है ।" [4] इस संदर्भ में व्यंग्य करते हुए प्रेमचन्द जी स्वयं मातादीन का परिचय देते हुए बताते हैं ---"मातादीन अपनी जवानी में स्वयं बड़े रसिया रह चुके थे , लेकिन अपने नेम-धर्म से नहीं चूके । माता-

दीन भी सुयोग्य पुत्र की भांति उन्हीं के पद-चिह्नों पर चल रहा था। धर्म का मूल तत्त्व है पूजा-पाठ, कथा-व्रत और चौका-चूल्हा। जब पिता पुत्र दोनों ही मूल तत्त्व को पकड़े हुए हैं, तो किसी की मजाल है कि उन्हें पथ-भ्रष्ट कह सके।" [5]

सिलिया के प्रति मातादीन और दातादीन का जो दृष्टिकोण है, वह मातादीन झिंगुरी सिंह के साथ जो बात करता है उससे और भी स्पष्ट हो जाता है --"... फिर मेरा तो सिलिया से जितना उबार होता है, उतना ब्राह्मण की कन्या से क्या होगा ? वह तो बहुरिया बनी बैठी रहेगी, बहुत होगा रोटियां पका देगी। यहां सिलिया अकेली तीन आदमियों का काम करती है, और मैं उसे रोटी के सिवा और क्या देता हूं ? बहुत हुआ, तो साल में एक धोती दे दी।" [6]

मातादीन के इस व्यवहार के संदर्भ में स्वयं लेखक की टिप्पणी है --" सिलिया का तन और मन लेकर भी बदले में कुछ न देना चाहता था। सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी, और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से नचाता रहता था।" [7]

परन्तु धर्म का मूल तत्त्व, मर्यादा और छोटी जाति के प्रति व्यवहार के इस ब्राह्मणिया दृष्टिकोण को ही चमार लोग इकट्ठा होकर समाप्त कर देते हैं। एक दिन वे लोग मातादीन को घेर लेते हैं। सिलिया का बाप हरखू, झिंगुरी सिंह को कहता है --" हम आज मातादीन को चमार बना के छोड़ेंगे, या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे। सिलिया कन्या जात है, किसी-न-किसी के घर जायगी ही। इस पर हमें कुछ नहीं कहना है, मगर उसे जो कोई भी रखे, हमारा होकर रहे। तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें ब्राह्मण बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह समरथ नहीं है तो तुम भी चमार बनो। हमारे साथ खाओ-पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो। हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धर्म हमें दो।" [8]

इसके बाद चमार लपक कर मातादीन के हाथ पकड़ लेते हैं और दातादीन और झिंगुरी सिंह अपनी-अपनी लाठियों को संभाल सके उसके पूर्व दो चमार मातादीन के मुंह में हड्डी का एक बड़ा-सा टुकडा डाल देते हैं। इस हड्डी ने धर्म के "मूल तत्व" को ही विनष्ट कर दिया। धर्म के जिस मूल-तत्व पर मातादीन औरक्ष दातादीन इतराते थे, इस हड्डी के के टुकड़े ने उसको ही खत्म कर दिया। उनका धर्म इसी खान-पान, छूत-विचार पर टिका हुआ था। आज इस धर्म की ही जड़ कट गई।

दातादीन काशी के पंडितों को बुलाकर तथा कई-सौ रूपये खर्च करके मातादीन को पुनः ब्राह्मण बनाते हैं, उसे गोबर खिलाया जाता है और गौमूत्र पिलाया जाता है। गोबर से उसका मन पवित्र हो गया और गो-मूत्र से उसकी आत्मा में घुस गये अपवित्रता के कीटाणु मर गये। ऐसा उसको ठसाया जाता है। लेकिन एक तरह से प्रायश्चित की यह प्रक्रिया सच-मुच में मातादीन को पवित्र कर देती है। इस घटना के बाद वह इस धार्मिक पाखंड को समझ जाता है। उस दिन से उसे धर्म के नाम से ही चिढ़ हो जाती है। वह अपना जनेव उतार फेंकता है और पुरोहिती को गंगा में डुबा आता है। उस दिन से वे पक्का किसान हो जाता है और अपना घर छोड़कर सिलिया के घर ही रहने लगता है। सिलिया चमारिन का घर अब उसके लिए देवी का मंदिर बन जाता है।

अछूत समस्या का यह एक निराला आयाम है, जिसे हम प्रेमचंद की एक कहानी "मेरी पहली रचना" के अलावा अन्यत्र कहीं भी देख नहीं सकते हैं। उस कहानी में चमार अपनी संघ-शक्ति के बल पर एक उंची जाति के युवक को पीट-पाटकर चल देते हैं, पर उसका "धरम" नहीं लेते। "गोदान में प्रेमचन्द एक कदम आगे बढ़ आये हैं और "खून का बदला खूख खून" की तर्ज पर "इज्जत का बदला धरम" लेकर चुकाते हैं।

"शेखर एक जीवनी" (अज्ञेय) में भी प्रकारान्तर से अछूत समस्या का उल्लेख आता है। मद्रास की जिस बोर्डिंग में शेखर रहता था, वह

केवल ब्राह्मणों के लिए था । एक दिन होस्टेल में हंगामा खड़ा होता है कि शेखर ब्राह्मण नहीं है, उसके चुटिया नहीं है, जनेव नहीं है, वह पूजा-पाठ नहीं करता है । अतः वह भ्रष्ट है । शेखर ब्राह्मण नहीं है, तो अछूत भी नहीं है । एक अब्राह्मण अशुद्ध के साथ जब ऐसा व्यवहार होता है , तो शूद्रों और अछूतों के साथ कैसा व्यवहार होता होगा, उसकी कल्पना की जा सकती है । प्रस्तुत उपन्यास में शेखर ने वहां के सामाजिक वातावरण को भी चित्रित किया है —" वहां के अछूत पंचम किसी कुलीन ब्राह्मण के पास या उसके दायरे के भीतर नहीं जा सकते, कुछ गज दूर रहना होता है, ब्राह्मणों के लिए अलग सड़के हैं, पंचम उस पर नहीं चल सकते । पंचमों को नदियों , नाव में बैठकर या किसी अन्य प्रकार से पार करनी होती है, क्योंकि पुल ऊंची जातियों के लिए सुरक्षित होते हैं, ब्राह्मणों के पडोस में अछूत भूमि नहीं ले सकते , कभी ब्राह्मण और पंचम का सामना हो जाए तो पंचम को अपना "पंचमत्व" घोषित करना पड़ता है कि अंजाने में उसकी छाया ब्राह्मण पर न पड़ जाए ।" [9]

छुआछूत और मंदिर प्रवेश की समस्या डॉ0 आरिग पुडिकत "नदी का शोर" उपन्यास में भी आकस्मिक हुई है । उपन्यास में बांध का ठेकेदार हरिजनों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उनके लिए एक मंदिर का निर्माण करवाता है और उसमें हरिजनों का प्रवेश करवाता है । मंदिर में हरिजनों के प्रवेश पर गांव वाले ≋ कहते हैं —"अगर हरिजन इस मंदिर में आते रहे, तो इससे अच्छा यही है कि यह खण्डहर हो जाए पर यह पवित्र मंदिर उनकी अशुद्ध उपस्थिति से कलुषित न हो ।" [10] जैसे ही हरिजनों ने मंदिर में प्रवेश किया वैसे ही कुछ ब्राह्मण अपने शाल वगैरह लेकर पिछवाड़े के दरवाजे से मंदिर के बाहर चले गए । उनका विचार था कि हरिजनों के मंदिर प्रवेश से मंदिर की पवित्रता भ्रष्ट हो गई है और अब ≋ यह मंदिर सामान्य लोगों के किसी काम का नहीं रहा ।

डॉ0 रामदरश मिश्र कृत "जल टूटता हुआ" उपन्यास में भी छुआ-

उपन्यास में भी छुआ-छूत की समस्या को लिया गया है । गोपाल उपाध्याय कृत "एक टुकड़ा इतिहास," जगदीश चंद्र कृत "धरती धन न अपना", डॉ० शिव प्रसाद सिंह कृत "अलग-अलग वैतरणी" , "बाला दूबे कृत "मकान दर-मकान", डॉ० रामदरश मिश्र कृत "सूखता हुआ तालाब, प्रभृति उपन्यासों में भी इस समस्या को किसी-न-किसी रूप में चित्रित किया गया है ।

§2§ दलितों के अपमान की समस्या :---

समाज में दलित वर्ग के लोगों की जो स्थिति है, उसे देखते हुए कोई भी व्यक्ति बहुत आसानी से , मन में किसी भी प्रकार का अपराध-बोध या पछतावे का भाव लाये बिना दलित वर्ग के लोगों का अपमान कर जाता है । उनके साथ गाली-गलौज का व्यवहार करते हैं । उनको मारते-पीटते हैं । जगदीश चंद कृत "धरती धन न अपना" उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग आए हैं, जहां बात-बेबात चमार जाति के लोगों का अपमान किया गया है । बात-बात में उनको "स्साला, कुत्ता , चमार" जैसे शब्दों से नवाजा जाता है । इस उपन्यास का काली शहर जाकर कुछ रूपये कमाकर आया है, अतः वह गांव के चौधरी हरनाम सिंह की आंखों में कांटे की तरह खटकता है । काली की विशेष स्थिति के कारण हरनाम सिंह काली को तो गाली देने का साहस नहीं कर पाता, परन्तु उसकी उपस्थिति में अपने नौकर मंगू को गाली देता है । हरनाम सिंह, छज्जू शाह , काली और मंगू ये चार व्यक्ति उपस्थित थे । हरनाम सिंह और छज्जू शाह के बीच में किसी बात को लेकर चर्चा हो रही थी । मंगू हरनाम सिंह का मुंहलगा नौकर था, अतः वह बीच में कुछ बोलने जाता है । काली उस समय उपस्थित न होता तो शायद हरनाम सिंह मंगू की बात पर ध्यान भी न देता, परन्तु काली वहां उपस्थित था अतः उसे खास सुनाने के लिए वह मंगू को फटकारते हुए कहता है--" कुत्ते की औलाद, चुप बैठ । कुत्ता चमार अपने आपको बड़ा पंच समझता है ।" 11

उंची जाति वाले बड़े लोग दलितों का अपमान करते हैं, यह बात तो समझ में आती है, क्योंकि ऐसा करना वे अपना जन्मजात अधिकार समझते हैं । परंतु बिडम्बना तो यह है कि छोटी जाति के लोग ही कई बार दूसरी छोटी जाति के लोगों का अपमान उसी "टोन" और "तर्ज" में करते हैं, जिसमें ब्राह्मण , ठाकुर या जमींदार, चौधरी लोग करते हैं । "धरती धन न अपना " उपन्यास में ही ऐसा एक प्रसंग आया है - सन्ता सिंह जो एक कारीगर है और पिछड़ी जाति का है, काली का मकान बनाने के लिए आया है । एक स्थान पर वह कहता है --" मुझे नन्द सिंह ने बताया था कि काली और निक्कू का झगड़ा हो गया है । उस समय मुझे समझ में नहीं आया कि तेरा नाम ही काली है । सच्ची बात पूछो तो गांव में कुत्तों और चमारों की पहचान रखना मुश्किल है । आते - जाते रहते हैं न ।" [12] मानो काली के गाल पर एक करारा तमाचा पड़ जाता है । दूसरे लोग अपमान करते हैं तो इतना बुरा नहीं लगता, परन्तु जब कोई अपना ही अपमान करता है तो वह बात नागवार गुजरती है ।

उंची जाति के ब्राह्मण, ठाकुर या चौधरी तो अपमान करते ही हैं, उंची जाति के आर्थिक दृष्टि से कम हैसियत वाले लोग भी दलितों का अपमान करने में पीछे नहीं रहते हैं । प्रस्तुत उपन्यास का काली शहर से अपने गांव "घोडेवाहा" आया है । एक बार शहर से एक मनीआर्डर उसके नाम आता है । मनीआर्डर अस्सी रूपये का था, परन्तु मनीआर्डर लाने वाला मुन्शी बारह आने पैसा कम देता है । वह सभी लोगों से ऐसा करता होगा, परन्तु काली तो पढ़ा-लिखा है । अतः वह उस डाकिया बाबू से तर्क करता है कि मनीआर्डर के पूरे पैसे देने का कायदा है । वैसे यदि आपको रखने हों तो बारह आने पैसे बक्सीस के रूप में रख लीजिए । तब मुन्शी उसका अपमान करते हुए कहता है --" अगर मुझे हाथ फैलाना होगा तो किसी महाजन या चौधरी के आगे फैलाउंगा, चमार के आगे नहीं फैलाउंगा ।" [13]

प्रेमचन्द के उपन्यास "गबन" में रमानाथ के छोटे भाई गोपी

और जालपा की बातों में छोटी जाति के प्रति अपमान का भाव दिखाई पड़ता है । यथा -- "दोनों नीचे चले गये तो गोपी ने आकर कहा-भैया इसी खटिक के यहां रहते थ क्या ? खटिक ही तो मालूम होते हैं । जालपा ने फटकार कर कहा - खटिक हों या चमार हो, लेकिन हमसे और तुमसे सौ गुने अच्छे हैं । एक परदेशी आदमी को छः महीने तक अपने घर में ठहराया, खिलाया-पिलाया । हममें है इतनी हिम्मत ? यहां तो कोई मेहमान आ जाता है तो वह भारी हो जाता है । अगर यह नीच है तो हम इनसे कहीं नीच हैं । गोपी मुंह-हाथ धो चुका था । मिठाई खाता हुआ बोला-- किसी को ठहरा लेने से कोई उंचा नहीं हो जाता । चमार कितना ही दान-पुण्य करे, पर रहेगा तो चमार ही । जालपा- मैं उस चमार को उस पंडित से अच्छा समझूंगी जो हमेशा दूसरों का धन खाया करता है ।" [14]

उपर्युक्त संवाद में गोपी की बातों से चमार जाति के प्रति सामान्य तौर पर लोगों में जो अपमान का भाव पाया जाता है, उसे हम लक्षित कर सकते हैं ।

सामान्य बात-चीत तथा लोक-व्यवहार में भी कई बार ऐसे शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिनसे इस वर्ग के प्रति समाज के मनोमस्तिष्क में इस वर्ग के लिए अपमान का जो भाव है, वह प्रकट होता है । एक कहावत है -- "कोयरिन पत्रा बांच ले तो पंडितन को कौन पूछेगा ?" यह कहावत सामान्य तौर पर तब प्रयोग में लायी जाती है, जब कोई निम्न जाति का व्यक्ति किसी उंचे पद पर बिठा दिया जाता है । तब उसकी अयोग्यता को सिद्ध करने के लिए इस कहावत का प्रयोग किया जाता है । ऐसे ही एक दूसरी कहावत है --"चमार की औलाद, बनने चली फौलाद ।" यहां तक कि चित्त या मन की पतनोन्मुखी गति के लिए "चमार-चित्त"कहा जाता है । गुजराती में यदि किसी घर में गंदगी का माहौल होता है तो कहा जाता है - " आ शुं ढेडवाडो मांड्यो छे ? अर्थात् यह

क्या "ढेड़वाडा" जैसा बना रखा है । गुजराती में "चमार" के लिए "ढेड" शब्द का प्रयोग होता है । यद्यपि अब इस शब्द को असंसदीय और गाली सूचक माना जाता है और कानून में उसके लिए सजा की व्यवस्था भी है , तथापि उसकी परवाह कौन करता है । कानून केवल कानून की पोथियों में ही रहता है । मैथिली भाषा में एक कहावत मिलती है -"चाम के चंडू चलल पहाड़ पीछलल टंगड़ी टूटल कपार ।" A man of leather-weaker class-went up a hill, he missed his footing and broken his head." 15

ऌ" 15

इस कहावत की ध्वनि यह है कि छोटी जाति का व्यक्ति कोई बड़ा काम नहीं कर सकता और यदि करने जाता है तो उसकी बुरी गत होती है । इसी प्रकार की एक दूसरी कहावत है —" चार जात गावे हरबोंग, अहीर, डफाली, धोबी, डोम ।" इसमें भी उक्त जातियों के प्रति अपमान की तिक्तता ही नजर आती है । ऐसी ही लोकोक्ति मिलती है —"बेटी ने किया कुम्हार, अम्मा ने किया लुहार, न तुम चलाओ हमार न हम चलाएं तुम्हार ।" ऌ The daughter attached to a potter, and the mother to a black-Smith. You must not speak ill of me, nor I of you."

ऌ" 16

एक राजस्थानी कहावत है —" भगना भण्ण मिल गया, कुण जाणै कूंभार ?" अर्थात् भक्तों के ऌसाधुओं केऌ साथ मिल गये, कौन जानता है कि कुंभार है ?" 17 इसी तरह गुजराती में एक कहावत मिलती है -- "ठेड़ी ना पग चार दिवस राता" । अर्थात् भंगिन के पैर चार दिन ही लाल रहते हैं, क्योंकि पांचवे दिन तो उसे मैला साफ करने जाना ही पड़ेगा । 18 "धरती धन न अपना " उपन्यास में भी एक स्थान पर आता है कि " चमार की खुशहाली भी उसकी जवानी की तरह चार दिन की होती है ।" 19

उक्त विवेचन का अर्थ यह है कि जन-मानस या लोकमानस में इन जातियों के प्रति अच्छे भाव नहीं मिलते । और यह सब अकारण नहीं हुआ है । सैकड़ों वर्षों से उन पर जो नियोग्यताएं और अयोग्यताएं थोपी गई थीं, उनके कारण ही इन कहावतों और मान्यताओं ने जन्म लिया है । "धरती धन न अपना" , "अलग-अलग वैतरणी", "लोहे के पंख", " हजार घोड़ों का सवार", "कब तक पुकारूं", आदि कई ऐसे उपन्यास हैं , जिनमें दलित जातियों को किस-किस तरह अपमानित और जलील किया जाता है उसके ढेरों उदाहरण मिलते हैं ।

§3§ दलितों पर होने वाले अत्याचार और अन्याय की समस्या :---

समाज में दलितों की स्थिति हमेशा निम्न प्रकार की रही है , अतः उन पर सब प्रकार के अत्याचार होते रहे हैं । गांवों में जाति-संस्था § Caste-System § इतनी मजबूत है कि ऊंची जाति के लोग नीची जाति के लोगों पर चाहे जितने अत्याचार करें, कोई उनको पूछने वाला नहीं है । बचपन की एक स्मृति मेरे मस्तिष्क में कौंध रही है । एक बार हमारे गांव में 20 मवेशियों में कोई बीमारी फैली, जिसके कारण ढोर फटाफट मरने लगे । गांव के भुआ ने §ओझा या गुनी§ धूडक कर कहा -- कि हमारे गांव के चमार ने कुछ तंत्र-मंत्र किया है, जिसके कारण गांव के ढोर मर रहे हैं । तब गांव के सभी लोगों ने मिलकर उस चमार की खूब जमकर पिटाई की थी । वह मरणासन्न हो गया था । अर्थात् कुछ भी हो उसका दोष दलितों पर ही थोपा जाता था । अभी कुछ दिन पहले की घटना है बड़ौदा की किसी सोसायटी में दस हजार रूपये की चोरी हुई । सोसायटी में "मामा लोग" §आदिवासी जाति के लोग§ ~~ौर~~ काम करते थे । सोसायटी के कॉन्ट्रेक्टर को एक आदिवासी युवक पर शंका गई । उन लोगों ने उसे बुरी तरह से मारा-पीटा । आखिर बड़ौदा के करीब के एक गांव में किसी पीर-औलिया की मजार पर उसे ले गये । उसके हाथ-पैर में

बेडिया डाल दी गई थी । ऐसी मान्यता है कि व्यक्ति यदि निर्दोष हो, तो बेड़िया टूट जाती है । उस आदिवासी युवक की बेड़िया नहीं टूटी । अतः उसे इतना मारा गया कि मार खाते-खाते वह बेहोश हो गया था ।[21] यहां ध्यान देने की बात यह है कि क्या ऐसा व्यवहार किसी ऊंची जाति के व्यक्ति के साथ किया जा सकता है ?

हिमांशु श्रीवास्तव कृत "नदी फिर बह चली" उपन्यास में एक प्रसंग आया है । कहारों के कुछ बच्चे गांव के एक जमींदार के आम के बगीचे में घुस जाते हैं । जब रखवाली करने वाला वहा पहुंचता है, तो दूसरे बच्चे तो भाग जाते हैं, पर एक बच्चा आम के वृक्ष पर पाया जाता है । रखवाली करने वाला व्यक्ति उसे पत्थर मारता है और उसकी मृत्यु हो जाती है । अब देखा जाय तो यह घटना एक हत्या की घटना है । आम के बगीचे में चोरी-चोरी आमों को चुराना कोई ऐसा जघन्य और अक्षम्य अपराध नहीं है कि उसकी इतनी बड़ी सजा दी जाए । इसके स्थान पर यदि कोई ऊंची जाति का बच्चा होता तो उसे "पुलिस-केश" बना दिया जाता । परन्तु यहां बच्चा गरीब कहार का है , अतः उसकी कोई दाद-फरियाद भी नहीं होती । उसे एक सामान्य अकस्मात मान लिया जाता है । इस घटना से मेरी स्मृति में एक दूसरी घटना कौंध रही है । खेड़ा जिले के भुवेल नामक गांव में आज से चालीस वर्ष पूर्व एक घटना हुई थी । हुआ था यों कि प्राथमिक शाला के अगड़ी जाति के एक शिक्षक ने एक हरिजन बालक की बूरी तरह से पिटाई की थी । उस बच्चे को मिर्गी के दौरे पड़ते थे । अतः उस पिटाई के दौरान उसकी मृत्यु हो गई । तब उस घटना को भी दबा दिया गया था । यहां प्रश्न यह खड़ा होता है कि शिक्षक यदि पिछड़ी जाति का होता और बच्चा यदि अगड़ी जाति का होता, क्या तब भी उस केश को दबा दिया जाता ?

डॉ० रामदरश मिश्र द्वारा प्रणीत "जल टूटता हुआ" उपन्यास में हरिजन कन्या लवंगी का भाई हंसिया पारबती नामक ब्राह्मण कन्या के

साथ आशनाई करते हुए पकड़ा जाता है । उपन्यास में बताया गया है कि उसमें हंसिया से ज्यादा दोष पारबती का था । पारबती ही अपनी यौन-क्षुधा की तृप्ति के लिए अपने हलिया हंसिया का उपयोग करती थी । परन्तु जब लोगों द्वारा पकड़ी जाती है, तब वह "बचाओ-बचाओ" ऐसा चिल्लाती है और सारा दोष हंसिया के मथ्थे मढ दिया जाता है । तब उच्च जाति के लोग हंसिया की बुरी तरह से पिटाई करते हैं । कदाचित वे उसे मार ही डालते परन्तु हंसिया की बहन लवंगी बीच में कूद पड़ती है और हंसिया को बचा लेती है । उस समय के लवंगी के पुण्य-प्रकोप में अमर जिन मुद्दों को उठाया गया है, उनकी तफ्तीश उसमें मिलती है —"क्या हुआ अगर ~~ब~~ मेरे भाई ने एक बाभन की लड़की से भला-बुरा किया ?... चमार का खून खून नहीं है ? बामन का खून ही खून है ? हमारी कोई इज्जत नहीं होती क्या, बामनों की ही इज्जत होती है ? ... जब चमरौटी की तमाम लड़कियों पर ये बाबा लोग हाथ साफ करते हैं तो कोई परलय नहीं आती और कोई चमार बामन की लड़की को छू ले तो परलय आ जाती है ।... हरिजनों के नेता मैं फरियाद करती हूं कि बोट लेने वाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून - खून नहीं है , हमारी इज्जत इज्जत नहीं है, तो हमारा वोट ही वोट क्यों हैं ।" 22

सन् 1980 के आस-पास अहमदाबाद के निकट जेतलपुर नामक गांव में एक हरिजन युवक को जला दिया गया था, क्योंकि गांव की एक सवर्ण लड़की से उसका प्रेम-व्यापार चल रहा था ।

यहां बहस का मुद्दा यह है कि सवर्ण जाति के लोग दलित जाति की स्त्रियों के साथ कैसा भी व्यवहार कर सकते हैं, वह उनका जन्मजात अधिकार हो जाता है और भूले-भटके कोई हरिजन युवक यदि ऐसा करता है तो उसे मार दिया जाता है और उसकी दाद-फरियाद नहीं होती है ।

जगदीश चंद्र कृत "धरती धन न अपना" उपन्यास में चमारों पर होनेवाले अत्याचार और अन्याय के अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं । उपन्यास

का प्रारंभ ही एक ऐसी घटना से होता है । चौधरी हरनाम सिंह चमारों के मुहल्ले में जाकर जितू नामक एक चमार को बुरी तरह से पीटते हैं । लेखक ने यहां जो टिप्पणी दी है, वह विचारणीय है । यथा --"चमादड़ी में ऐसी घटना कोई नई बात नहीं थी । ऐसा अक्सर होता रहता था । जब किसी चौधरी की फसल चोरी से कट जाती या बरबाद हो जाती या चमार चौधरी के काम पर न जाता या फिर किसी चौधरी के अन्दर जमीन की मल्कियत का अहसास जोर पकड़ लेता तो वह अपनी साख बनाने और चौधर मनवाने के लिए इस मुहल्ले में चला जाता ।" [23]

इसी उपन्यास में गांव के चमारों से जो बेगार करवाया जाता है, उसका भी जिक्र आया है । बाढ़ के कारण वर्षा का पानी चमादड़ी में प्रवेश करने लगता है और उसके कारण बाबा फत्तू का घर गिर जाता है । उस समय बाढ़ की इस समस्या पर गांव के तमाम-ग्गिराम लोग चुप रह जाते हैं । परन्तु बाढ़ के प्रवाह में एक वृक्ष के गिर जाने पर पानी का बहाव गांव के दूसरे मुहल्लों की ओर हो जाता है । चौधरियों के घर भी इस चपेट में आ जाते हैं । तब गांव वाले इस समस्या पर सोच-विचार करने बैठते हैं । बाढ़ का यह पानी "चो" ‖नाला‖ पर बने बांध के कारण गांव में प्रवेश रहा था । अतः उससे बचने के लिए "चो" में एक शिगाफ कर दिया जाता है । उससे मकाई की फसल को नुकशान होता है, पर गांव बच जाता है । जब बाढ़ की यह बला टल जाती है , तब गांव वाले उस बांध को पूर्ववत बना देना चाहते हैं और इस काम के लिए चमादड़ी के सभी चमारों को काम पर लगाया जाता है । प्रारंभ में उनको इस बात की प्रसन्नता होती है कि चलो इसी बहाने कुछ दिन की रोजी-रोटी का इन्तजाम हो जाएगा । परन्तु दो-तीन दिन तक मजदूरी का कोई जिक्र नहीं होता, तब उनको लगता है कि उनसे केवल बेगार ली जा रही है । काम पूरे गांव का था, अतः न्याय-बुद्धि से यदि विचार किया जाए तो पूरे गांव के लोगों को उस कार्य में लग जाना चाहिए था । केवल चमारों को काम पर लगाना है

तो फिर उनको उनकी मजदूरी का मेहनताना तो मिलना ही चाहिए । बिना मजदूरी के खाली पेट ये बेचारे कई-कई दिनों तक बेगार कैसे कर सकते हैं ? अतः वे लोग काम न करने का फैसला करते हैं । उनके इस सत्याग्रह से डॉ० बिशनदास और कॉमरेड टहल सिंग को बहुत प्रसन्नता होती है । चमारों के इस सत्याग्रह में उनको मार्क्सवादी इन्कलाब दिखाई पड़ता है । ये दोनों क्रान्ति और समाजवाद की बातें तो करते हैं, परन्तु उन्हें किसी प्रकार का साथ-सहयोग नहीं देते । वे केवल बातों के बड़े पकाते हैं, उनकी यातनाओं से उन्हें कोई सरोकार नहीं है । चमारों के इस सत्याग्रह के खिलाफ गांव के लोग उनका सामाजिक और सामूहिक रूप से "बायकाट" करते हैं । गांव की नाकाबंदी की जाती है और चमादड़ी के लोगों को कुदरती हाजत तक के लिए बाहर नहीं जाने दिया जाता । अतः धीरे-धीरे उनके हौंसले पस्त होने लगते हैं और अन्ततः उनको चौधरियों के सामने घुटने टेकने पड़ते हैं । चौधरियों का भी बड़ा नुकसान हो रहा था, अतः आंशिक रूप से चमारों की बात मान ली जाती है और दोनों में समझौता हो जाता है, पर काम की पूरी मजदूरी नहीं मिलती ।" [24]

प्रेमचन्द जी के "प्रेमाश्रम" उपन्यास में भी "बेगार" की समस्या को लिया गया है । सरकारी अधिकारी निम्न जातियों के गरीब मजदूरों को तो अपना बंधुआ गुलाम समझते हैं । इसमें कुर्मी, अहीर आदि जातियों के लोग भी आ जाते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में तहसीलदार साहब इन लोगों से बेगार करवाते हैं । प्रेमशंकर जब इस मामले में हस्तक्षेप करते हैं तब चमारों में कुछ हिम्मत आती है और वे अपनी मजदूरी मांगने का साहस करते हैं । उस स्थिति का वर्णन प्रेमचंद जी इस प्रकार करते हैं — "एक चमार बोला, दिन-भर घास छीला, अब कोई पैसे ही नहीं देता । घंटों से खड़े चिल्ला रहे हैं । तहसीलदार ने क्रोधोन्मत्त होकर कहा, आप यहां से चले जाएं, वर्ना आपके हक में अच्छा न होगा । नाजिर जी, आप मुंह क्या देख रहे हैं ? चपरासियों से कहिए, इन चमारों की अच्छी तरह खबर लें । यही इनकी

मजदूरी है । चपरासियों ने बेगारों को घेरना शुरू किया । कान्स्टेबलों ने भी बंदूकों के कुंदे चलाने शुरू किये । कई आदमियों को चोट आ गयी ।[25]

मन्नू भण्डारी कृत "महाभोज" उपन्यास में बिसू नामक एक हरिजन युवक की हत्या इसलिए कर दी जाती है कि वह हरिजन समाज में चेतना जगाने का कार्य कर रहा था । वह उनको अपने अधिकारों के प्रति सचेत कर रहा था । अतः गांव के न्यस्तहित वाले लोग पहले तो उसे नक्सलवादी करार देते हुए, जेल भिजवा देते हैं । जेल से छूटने के बाद बिसू पुनः अपना कार्य शुरू करता है तब सरपंच के भतीजे जोरावर सिंह के गुंडे इन लोगों पर आतंक और दहेसत फैलाने के उद्देश्य से उनके घरों को जला देते हैं । इस आगजनी में कुछ हरिजन जल कर मर जाते हैं । जोरावर सिंह के लोग इसे एक महज अकस्मात का रूप देते हैं और पुलिस के अफसर भी उसे मान लेते हैं । परन्तु अचानक बिसू के हाथ कुछ ऐसे सबूत लग जाते हैं, जिनसे प्रदेश के बड़े-बड़े लोगों पर आंच आ सकती थी । बिसू इन सबूतों को इकट्ठा करके दिल्ली जाने ही वाला था कि जोरावर के लोग उसकी हत्या कर देते हैं और उसे आत्महत्या का स्वरूप दिया जाता है । बिसू की यह हत्या एक मामूली घटना बनकर रह जाती, परन्तु उस प्रदेश में एक उपचुनाव होने वाला था । उपचुनाव के कारण विपक्षी नेता शुकुल बाबू बिसू की हत्या की घटना को हवा देते हैं । वे इस घटना का राजनीतिक लाभ उठाना चाहते हैं । दूसरे शब्दों में कहें तो वे बिसू की मौत को अपने हक में भुनाना चाहते हैं । स्थिति की नजाकत को देखते हुए प्रदेश के मुख्यमंत्री दा साहब इसे लेकर जांच कमीटी का आस्वासन देते हैं । डी.आई.जी. सिन्हा साहब सक्सेना नामक एक पुलिस अधिकारी को उसकी जांच के लिए भेजते हैं । सक्सेना साहब के हाथों में सिन्हा साहब ने पूर्व-निश्चित जांच रिपोर्ट का एक नक्शा थमा दिया है, जिसके अनुसार बिसू की हत्या आत्महत्या ठहरती है । सक्सेना साहब को यही प्रमाणित करने के लिए भेजा गया था, परन्तु बिन्दा तथा महेश बाबू की बातों से सक्सेना साहब को सत्य का कुछ पता चलाता है, जिसमें शंका की सुई

जोरावर तथा दा साहब की ओर जाती है । अतः सक्सेना का तबादला करवा दिया जाता है और बाद में उनको निलंबित कर दिया जाता है । इस प्रकार मन्नू जी का यह उपन्यास दलित वर्ग पर होने वाले अत्याचारों और अन्यायों का एक सच्चा दस्तावेज बन पड़ा है । बिन्दा बिसू का मित्र है । एक स्थान पर वह सक्सेना साहब को कहता है --" नहीं, नहीं ! उसे मारा गया है । क्योंकि वह जिन्दा था । जिन्दा रहने का मतलब समझते हैं न आप ? लोग भूल गये हैं जिन्दा रहने का मतलब और जो जिंदा है वह जी नहीं सकते । अपने इस देश में मार दिये जाते हैं, कुत्ते की मौत जैसे बिसू मार दिया गया ।" 26

स्वतंत्रता के पश्चात, हमारे देश की राजनीति में "गुण्डाइज्म" के आयाम का प्रवेश हुआ है । राजनीति के इस अपराधीकरण ने अनेक समस्याओं को पैदा किया है । सरोहा का जोरावर एक ऐसा ही गुण्डा है। प्रदेश के मुख्यमंत्री दा साहब का वह खास आदमी है । गांव के सरपंच का भतीजा है । सब लोग उसके आतंक से थर-थर कांपते हैं । उपन्यास का एक अन्य पात्र बिन्दा बिलकुल ठीक ही कहता है --" लोगों के घर, जमीन और गाय-बैल ही रेहन, नहीं रखे हुए हैं जोरावर और सरपंच के यहां, उनकी आवाज और जबान तक बंधक रखी हुई हैं ।" 27

यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" द्वारा प्रणीत "हजार घोड़ों का सवार" एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें दलित जाति के लोगों पर जो अत्याचार और जुल्म ढाए जाते हैं, तथा उनके साथ जो अन्याय होता है उसका यथार्थ चित्रण मिलता है । भंगिन सुनगड़ी को जमादार हमीरखां डंडों से इसीलिए पीटता है कि उसने किसी ठाकुर के डेरे के पास कचरा डाल दिया था । दर-हकीकत उसकी टोकरी टूट गई थी और उसके कारण कचरा फैल गया था । परन्तु इतनी-सी बात पर सुनगड़ी को मार-मार कर उसका बुरा हाल कर दिया जाता है । गुन्दली चमारन को पंडित गजराज गेडिये (डण्डे) से केवल इसीलिए बुरी तरह से पीटते हैं क्योंकि वह पीपल गट्टे पर बैठ गई थी ।[28]

पीपल के वृक्ष को पवित्र माना गया है । गुन्दली उसके गट्टे पर बैठ जाती है, और इस पवित्र वृक्ष की लकड़ी को अपवित्र कर देती है, इसीलिए उसे बुरी तरह से पीटा जाता है । प्रस्तुत उपन्यास में बीकानेर क्षेत्र के चमार, धानक सांसी, भंगी और थौरी जैसी जातियों के जीवन को यथार्थतः चित्रित किया गया है । उपन्यास में यह भी बताया गया है कि सामन्त वर्ग के लोग जोखिम भरे कामों के लिए अछूत जातियों के लोगों को बुलाते हैं और उनके आहत होने या मर जाने पर कोई उनकी दाद-फरियाद तक सुनने को तैयार नहीं होता । उपन्यास में एक यथार्थ घटना का वर्णन मिलता है । जमनू नामक एक चमार बालक को राजकीय भवन के छज्जे पर दीपक लगाने के लिए लगाया जाता है, क्योंकि बीकानेर में लाट साहब पधार रहे थे और उनके स्वागत की तैयारियां हो रही थी । छज्जे पर दीपक लगाने का काम बड़ा जोखिमभरा था, जो एक छोटे बच्चे को सौंपा जाता है । बालक जमनू छज्जे से गिर जाता है और बुरी तरह से आहत होता है । परन्तु वहां उपस्थित अधिकारीगण पर इस दुर्घटना का कोई असर नहीं होता । बच्चे की चिकित्सा की भी कोई व्यवस्था नहीं होती , बल्कि इस घटना के साथ सहानुभूति दिखाने वालों को कामचोर कहा जाता है ।" [29]

डॉ० शिवप्रसाद सिंह द्वारा प्रणीत उपन्यास "अलग-अलग वैतरणी" में दुक्खन चमार की दयनीय स्थिति का वर्णन मिलता है । दुक्खन चमार की सारी जिन्दगी जैपाल सिंह की बेगारी करते बीत गई, लेकिन एक दिन जरा-सी गलती हो जाने पर जैपाल सिंह के लड़के बुझारथ सिंह ने पांव पर कसकर लाठी मार दी और उसकी टांग तोड़ दी । इस पर उसकी औरत कहती है— "अउर करो मर-मर कर बेगारी । जी-जांगर लगाकर इन लोगों का काम करो । तनिक कुछ कह दो, कहीं भूल-चूक हो जाए तो मार-मार के जाने ले लें ।" [30] इस पर सभी चमार इकट्ठे होकर जैपाल सिंह के घर जाते हैं, किन्तु न्याय के बदले उन्हें उल्टी डांट खानी पड़ती है । जैपाल सिंह उनको दस-दस रूपये का नोट पकड़ाते हुए कहते हैं —" ठीक है तब । बब्बन से

तुम्हारी नहीं पटेगी यह समझ रहे हैं ।" [31] जैपाल सिंह की इस बात को सुनकर सभी चमारों का चेहरा उतर जाता है और वे कहते हैं --" यही नियाव पाने आए हैं हम । मार भी खाए और यदि बोलें और दुहाई दें तो उल्टा देश-निकाल भी मिल जावे । वाह ! " [32]

इसी उपन्यास में गांव के ठाकुरों के अत्याचार और अन्याय का एक दूसरा प्रसंग भी मिलता है । सुगनी और सूरज सिंह के अनैतिक संबंधों को लेकर चमारों में विरोध होता है । तब उनके इस अन्याय-विरोधी संघर्ष को आतंक एवं हिंसा से दबा दिया जाता है । यथा —" ठाकुराने से पचीसों लाठियां निकल पड़ी । तालाब, सिवान, रास्ते सभी तो ठाकुरों के ही थे । इनका उपयोग करने का चमारों को क्या हक भला ? चमार और चमारियों पर बेहद मार पड़ी । तालाब पर नहाती औरतों को झोंटे पकड़ कर खींचा गया । खेत से साग-पात, साग-सालन लाती चमार लड़कियों को दौड़ाकर बेइज्जत किया गया । लाठ-डांड पर चलते चमारों के बदन लहू - लुहान हो गए । देवकिसुन का सिर फट गया ।" [33] इसी संघर्ष में सवर्णों के लठैतों की मार से सरूप शहीद तो हो जाता है और उसकी पत्नी दुलारी विधवा हो जाती है ।

दया शंकर मिश्र के उपन्यास छोटी-बहू की सिंघाड़ो के साथ गांव के लोग इतने अत्याचार करते हैं कि अन्ततः वह उनकी बेहयाई बर्दाश्त न कर सकने के कारण आत्महत्या कर लेती है । किसी बेसहारा अछूत लड़की को आत्महत्या करनी पड़े, वे स्थितियां कैसी होंगी, उसकी कल्पना हम कर सकते हैं ।

गिरिराज किशोर के उपन्यास "यथा प्रस्तावित" में उपन्यास के नायक बालेसर का हरिजन होना , उसके लिए अभिशाप बन जाता है । बालेसर एक कर्तव्यनिष्ठ स्वाभिमानी, संवेदनशील कर्मचारी है, पर समूची व्यवस्था पर सवर्णो के वर्चस्व के कारण उसे भयानक यातनाओं का सामना करना पड़ता है, और अन्ततः वह विक्षिप्त हो जाता है । इस गलत और सड़ी-गली समाज

व्यवस्था का दण्ड बालेसर को मिलता है । पहले उस पर तरह-तरह के अत्याचार करके, उसे अपमानित और जलील करके उसे पागल बना दिया जाता है । और बाद में उसी बिला पर उसे नौकरी से अलग कर दिया जाता है । इस सन्दर्भ में बालेसर की पत्नी अपनी कथा-व्यथा कहती है --" जांच काहे की हो चुकी, उनके दिमाग की या दफ्तर की ? साहेब इन दोनों में से किसी न किसी में तो गड़बड़ है । उनका तो दिमाग खराब हो ही चुका है, इस दफ्तर की मैं नहीं कहती । जैसे छोटा होना पाप होता है वैसे ही दिमाग का चला जाना भी जुर्म होता है । जुर्म है तो यह दफ्तर जुल्मी क्यों नहीं जिसने अच्छे खासे, कर्ते-धर्ते आदमी को पागल बना दिया और अब उस पागल को सही दिमाग वाला मान कर उसकी गर्दन पर रेती चलाना चाहता है ।[34]

विश्वेश्वर द्वारा प्रणीत "महापात्र" उपन्यास में सामाजिक व्यवस्था के शिकार होते हैं । डोम जाति के कुछ लोग जिनमें कमला, उसकी मां फूलमती उसकी पिता नीलमणि, उसकी मौसी रुक्मणि, उसका मौसा खुसरू का पुत्र तारकनाथ और खुसरू की पुत्री अन्नपूर्णा ये सभी पात्र दलित वर्ग के हैं । अछूत समुदाय के हैं । एक तो अछूत ऊपर से गरीब । अतः पुलिस कहर भी उन पर ही टूटता है । भिलाई के इन्जीनियर मि. घोष से घर पर पत्नी की अनुपस्थिति में चोरी होती है । मिसेज घोष चोरी की शंका मिस्टर घोष के सराबी, जुआरी मित्रों पर करती है । परन्तु मि. घोष अपनी नौकरानी कमला के विरूद्ध पुलिस थाने में चोरी की रिपोर्ट दर्ज करवाते हैं । इसमें कमला तथा उसके रिस्तेदारों को धर दिया जाता है और उनकी बुरी तरह से मारा-पीटा जाता है । कमला के छत के पंखे से लटका दिया जाता है । फूलवती और नीलमणी को भी इस कदर मारा जाता है कि वह मार से बेहोश हो जाते हैं । पुलिस की मार के कारण रुक्मणी का अधूरा गर्भ गिर जाता है । उनकी झोपड़ियों की तलासी में उनका सारा सामान नष्ट कर दिया जाता है । और झोपडियों को तहस-नहस कर दिया जाता है । इन पर हो रहे अत्याचारों को अखबारों में प्रकाशित करने वाले नेता

जी अन्त समय में पैसे लेकर बिक जाते हैं । जिलाधीश से लेकर लोकसभा तक इस काण्ड की गूंज उठती है, पर न तो इन गरीबों को इनके घर मिलते हैं, न सामान और न नौकरियां । वे मनुष्य के स्थान पर "महापात्र" बन कर रह जाते हैं ।

आज भी इन दलित जातियों के साथ कैसे-कैसे अत्याचार होते हैं उसे लेकर दिनांक 5-1-1997 को बड़ौदा के कीर्ति मंदिर में डॉ० जे.एस. बंदूकवाला के निर्देशन में एक दलित युवा शिबिर का आयोजन हुआ था । उस शिबिर में जो पत्रिका बांटी गई थी, उसमें "ब गुजरात-मित्र" , "संदेश", "गुजरात समाचार", "लोकसत्ता" आदि समाचार पत्रों से कुछ खबरें प्रकाशित की गई थी, जिनमें से कुछ की ओर ध्यान आकृष्ट करना मैं इस संदर्भ में आवश्यक समझता हूं ।

1- एक और स्त्री को निर्वस्त्र करके गांव में घुमाया गया ।

2- एक हरिजन युवान को पेट्रोल छांटकर जला दिया गया ।

3- अरेरा की सिवान में आदिवासी किशोरी पर पाशवी बलात्कार किया गया ।

4- थरा गांव में छूरा भोंक कर दलित अध्यापक की हत्या की गई ।

5- कांकणोल गांव में स्कूल में पानी पीने गये हरिजन बारातियों पर तीक्ष्ण हथियारों से हमला किया गया ।

6- तमिलनाडु में पुलिस और सवर्णों के त्रास से अस्सी ब हजार दलितों ने मुस्लिम-धर्म अंगीकृत कर लेने की धमकी दी है ।

ये सब समाचार जनवरी सन् 1997 के आस-पास के हैं । इनसे इतना तो प्रमाणित होता ही है कि दलित जातियों पर होने वाले अत्याचारों का सिलसिला आज भी जारी है । समाचार है कि 50 वें प्रजासत्ताक दिन के उपलक्ष्य में हमारे राष्ट्रपति जी श्री के.आर.नारायण अपने राष्ट्र के नाम संदेश में देश में दलितों और स्त्रियों पर बढ़ रहे अत्याचारों पर चिंता व्यक्त

व्यक्त कर रहे थे, उसी समय बिहार के जेहानाबाद जिले के शंकर बिगहा गांव में जमींदारों की भाड़ूती "रणवीर सेना" ने 21 दलितों की जघन्य हत्या कर दी थी ।[35]

§4§ दलित-स्त्रियों के यौन-शोषण की समस्या :——

लगभग सभी उपन्यासों में दलित जाति की स्त्रियों के यौन - शोषण की समस्या को लिया गया है, क्योंकि यह हमारे समाज की एक घिनौनी वास्तविकता है । दलित जातियों के लोगों को गांव के सत्ताधीश संपन्न वर्ग के जमींदार लोगों पर आजीविका के लिए निर्भर रहना पड़ता है । पुरूष-वर्ग हल चलाता है या खेतिहर मजदूरी करता है और उनकी स्त्रियां भी इन लोगों के यहां मेहनत-मजदूरी का काम करती हैं । अतः उनकी विवशता का लाभ उठाकर ये लोग उनका यौन-शोषण भी करते हैं, इतना ही नहीं वे इसे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं । कोई दलित यदि इस संदर्भ में दाद-फरियाद करता है तो लोग उसे गंभीरता से नहीं लेते, बल्कि कई बार उसका मजाक उड़ाते हैं, उसे मारते-पीटते भी हैं ।

डॉ० रांगेय राघव के उपन्यास "कब तक पुकारूं ?" में करनट जाति के शोषण की बात आती है । इस जाति के लोग जरायमपेशा §अपराध जीवी§ माने जाते हैं । कंवर, सांसी, मोग्या, बाबरी आदि जातियां जरा-यमपेशा मानी जाती हैं । सभ्य और सवर्ण समाज में इन जातियों के नाम गालियों में सम्मिलित होते हैं । इस उपन्यास में लेखक ने चित्रित किया है कि इस जाति के लोगों की स्त्रियों का खूब यौन-शोषण होता है । बड़े लोग तथा पुलिस के दारोगा तथा दूसरे अधिकारी भी उनका यौन-शोषण करते हैं । सुखराम की पत्नी प्यारी बहुत सुंदर है । एक बार करतब दिखाते हुए दरोगा की नजरों में वह आ जाती है । चयारी [illegible] है * के लिए थाने से बुलावा आ जाता है । प्यारी मना करती है । तब उसकी मां सोना उसे कहती है --" औरत का काम औरत औरत काम है । इसमें भला-

बुरा क्या ? कौन नहीं करती । नहीं तो मार-मार कर खाल उधेड़ देगा दरोगा । और तेरे बाप और खसम दोनों को जेल भेज देगा, फिर न रहेगा तो क्या करेगी ? फिर भी तो पेट भरने के लिए यही करना होगा ?" [36]

डॉ० शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास "अलग-अलग वैतरणी" में एक वैतरणी सुगनी-सूरज सिंह के अवैध यौन-संबंधों की भी है । सूरज सिंह नियमित रूप से चौथे-पांचवे दिन सुगनी के पास अपनी हवस पूरी करने आता है । सुगनी चमार युवती है । दूसरे चमारों को यह बात नागवार लगती है और उसे वे अपनी जाति का अपमान समझते हैं । अतः एक दिन वे सूरज सिंह को रंगे हाथ पकड़ लेते हैं । चमारों के चौधरी भगत किसुन ने तो इन संबंधों को अपनी जाति की नियति मानकर उसे स्वीकार कर लिया था, अतः वह तो इस प्रसंग पर मौन साध लेता है, परन्तु रामकिसुन नहीं मानता । वह कहता है--" करेंगे क्या ? बटोर करेंगे । बारह गांवों के चौधरियों को बुलाकर तै करेंगे कि हम लोग मेहनत मजूरी करके जिएं कि बहन-बेटी से पेशा कराके दिन काटें ?" [37] यहां राम किसुन के शब्दों में इस जाति के लोगों की व्यथा ही मानो बोल रही है । दूसरे इनमें जो एक नयी चेतना आयी है, उनका भी कुछ संकेत यहां दृष्टिगोचर होता है । पुराने लोग तो ऐसे संबंधों को लेकर आंख आडा कान कर लेते थे, परन्तु अब नयी पीढ़ी के लोग इसे अपनी जातिगत नियति मानकर स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं ।

रेणु के "मैला आंचल" उपन्यास में भी इन अवैध संबंधों की और इनके यौन-शोषण की अनेक प्रसंगों में विस्तृत चर्चा मिलती है । यह इतना ज्यादा हो गया है कि दलित जाति की स्त्रियां "कब तक पुकारूं" की प्यारी की मां सोना की तरह उसे अपनी नियति या स्त्री-धर्म मानने लगी हैं । ये दलित स्त्रियां अपने वैयक्तिक लड़ाई-झगड़ों में गाली-गलौज के रूप में एक-दूसरे को ऊंची-जाति के लोगों की लुगाई या रखैल बताती हैं ।

भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यास "सती मैया का चौरा" में कैलसिया

और बसमतिया के यौन-शोषण की घटनाओं को चित्रित किया गया है । नंदराम तेली का बेटा किशन कैलसिया के साथ बलात्कार करता है । तब चमार जाति के लोग इस अन्याय के खिलाफ आवाज उठाते हैं । उस समय ष्र पन्ने के अब्बा, जिसे गांव में लोग मिया जी कहते हैं, भी चमारों को जी - जान से साथ देते हैं । वे कैलसिया को पालकी में बिठाकर थाने में ले जाते हैं । कैलसिया को इस सम्मान को पाकर धन्य हो जाती है । मिंया जी की चौखट उसके लिए किसी देवता की देहरी से कम पूजनीय नहीं है । परन्तु मिंया जी के निधन के बाद कैलसिया की वह चौखट छूट जाती है, क्योंकि मिंया जी का लड़का पन्ने उसकी ओर बिलकुल ध्यान देता नहीं है ।

बसमतिया मुनेसरी चमारिन की लड़की है । वह मन्ने के खेतों में काम करने जाती है । मन्ने उसके साथ प्यार का नाटक खेलता है । जब मन्ने देखता है कि बसमतिया गांव की ओर लड़कियों जैसी नहीं है, तो वह उसे अपनी वासना का शिकार बनाने के लिए उसके साथ प्रेम का नाटक रचता है और उससे विवाह का वचन देता है । बसमतिया समर्पित हो जाती है । उसे मन्ने से गर्भ रहता है । जब बसमतिया के पांव भारी हो जाते हैं तब मन्ने पल्ला झाड़कर खड़ा हो जाता है और बसमतिया को समझाता है कि वह इस अवांछित गर्भ को गिरा दे । पर बसमतिया को नारी-धर्म इसे स्वीकार नहीं कर पाता । वह मन्ने को धिक्कारने लगती है । वह अपनी मां और मन्ने दोनों के दबावों को न मानते हुए बच्चे को जन्म देती है । और उसे पिता का नाम दिए बिना ही बड़ा करने का साहस करती है ।

इसी प्रकार का साहस और गांव के बड़े-बड़े लोगों से टकराने की हिम्मत डॉ० रामदरश मिश्र के उपन्यास "सूखता हुआ तालाब" की हरिजन कन्या चेनइया में भी है । एक तरफ सवर्ण कलावती अपने चचेरे भाई से गर्भवती होकर उस गर्भ को गिरा देती है, वहां चेनइया पेट की भूख के कारण कइयों की अंकशायिनी होती है । इसके फलस्वरूप चेनइया गर्भवती बन जाती है । परन्तु वह न तो गर्भ को गिरवाती है और न उसके बाप का नाम ही बताती

है । इस कारण उसे गांव भी छोड़ देना पड़ता है । एक स्थान पर उपन्यास के एक आदर्शवादी पात्र देवप्रकाश से कहती है —" बाबा, गांव सचमुच रहने लायक नहीं है, मैं गांव से भाग रही हूं । गांव ने मुझे वेस्सा {वेश्या} बनाकर छोड दिया है, अब जान लेने पर उतारू हैं ।...उसने चाहा कि बच्चे को गिरा दूं । मैंने इन्कार कर दिया । शिवलाल बाबा तो मुंह काला करके गायब हो गये, लेकिन दयाल बाबू रोज हमें धमकी देते रहे कि साली नाम बताया तो थाने में बन्द करवा कर तेरी ऐसी-तैसी करवा दूंगा । ... पेट में जो झोरी लटकाए घूम रही है उसे भी खत्म कर नहीं तो तुझे भी खत्म कर दिया जाएगा ।" [38]

जगदीश चन्द्र द्वारा प्रणीत उपन्यास "धरती धन न अपना" में भी दलित-जाति की स्त्रियों के यौन-शोषण के कई प्रसंग वर्णित हैं । गांव में चौधरी हरनाम सिंह का आतंक बुरी तरह से छाया हुआ है । इ अपनी जवानी में प्रीतो नामक चमारिन से उसके संबंध थे । पूरा गांव इस बात को जानता था । यहां तक कि प्रीतो के आदमी को भी इस बात का पता था परन्तु गरीबी और लाचार्गी के कारण वह मन मसोस कर रह जाता था । उसका भतीजा हरदेव चौधरी प्रीतो की अविवाहित बेटी लच्छो की लाज सरेआम लूटता है । इस कार्य में मंगू नामक चमार ही उसकी सहायता करता है । यह मंगू बड़ा बेगैरत इन्सान है । उसकी आंखों का पानी बिलकुल सूख गया है । हरदेव चौधरी मंगू के सामने ही मंगू की बहन ज्ञानो की छातियों की तुलना कच्चे खरबूजे से करता है और वह चुप रह जाता है । [39] एक-दूसरे प्रसंग में मंगू हरदेव चौधरी की बदाम-रोगन से मालिश कर रहा होता है । मंगू हरदेव के खाये-पिये और कसरती बदन की प्रशंसा करता है । इस पर हरदेव कहता है कि क्यों न हो बदाम-पिस्ता वाला औटाया हुआ दूध जो पीता हूं । इस पर "ही ! ही !" करते हुए मगू कहता है कि —"इसका फायदा भी तो किसी चमारिन को ही होगा ।" [40]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रायः सभी उपन्यासों में जहां

दलित-जीवन का चित्रण किसी न किसी रूप में हुआ है, दलित-स्त्रियों के यौन-शोषण का आयाम भी वहां आकलित हुआ ही है ।

§5§ दलित जातियों में भी संस्तरण §ऊंच-नीच की Hierarchy § की समस्या :---

वर्ण-व्यवस्था पर आधारित अपनी अन्यायपूर्ण एवं शोषणोन्मुखी जाति-प्रथा को हमेशा-हमेशा बरकरार रखने के लिए तथा उसे ईश्वर-प्रेरित एवं संस्थापित और न्यायपूर्ण सिद्ध करने के लिए पंडे-पुरोहितों ने निम्न जातियों में भी अनेक उप-जातियों का जाल बुन दिया है और वहां भी ऊंच-नीच का ख्याल उनके दिमागों में बुरी तरह से चस्पा हो गया है । इससे अगड़ी जाति के लोगों को एक दूसरा फायदा यह होता है कि ये लोग भी इसे लेकर परस्पर लड़ते-झगड़ते रहे और उनमें संगठन जैसी कोई चीज कभी पैदा न हो सके । अगड़ी जाति के लोगों को यह भलीभांति ज्ञात है कि निम्न जातियों का संगठन उनको भारी पड़ सकता है, इसीलिए तो जहां-जहां निम्न जातियों के संगठित होने का खतरा मंडराने लगता है, वहां-वहां वे पहले से ही शतर्क हो जाते हैं । "महाभोज" के बिसू की हत्या के पीछे भी यही कारण है ।

जगदीश चंद्र कृत उपन्यास "धरती धन न अपना" में हमें ऊंची-नीची जातियों में संस्तरण की भावना का उल्लेख मिलता है । काली और ज्ञानो दोनों दलित जाति के हैं । काली ज्ञानो को चाहता है और ज्ञानो भी काली को चाहती है । उनका यह प्रेम केवल मानसिक या बौद्धिक धरातल पर न रहकर शारीरिक धरातल तक जाता है । फलतः ज्ञानो को काली से गर्भ रहता है । काली और ज्ञानो का विवाह हो जाए तो यह समस्या आशानी से हल हो सकती है । परन्तु उपन्यास में बताया गया है कि काली और ज्ञानो दोनों दलित जाति के होते हुए भी उनकी उप-जातियां अलग - अलग हैं । उनमें रोटी - व्यवहार तो है, परन्तु बेटी-व्यवहार नहीं है ।

ये लोग परस्पर एक-दूसरे को एक-दूसरे में ऊंच-नीच समझते हैं । फलतः उनका जो जातिगत ढांचा है , उसके चलते इन दोनों में विवाह नहीं हो सकता । उनका प्रणय परिणय की कोटि तक नहीं पहुंच सकता । ज्ञानो से विवाह करने के लिए काली धर्म-परिवर्तन करके ईसाई तक होने को तैयार हो जाता है, परन्तु ज्ञानो नाबालिग है, अतः पादरी कोई खतरा नहीं उठाना चाहता, ज्ञानो की मां ज्ञानो को विष देकर मार डालती है । काली ज्ञानो के प्रेम में पागल होकर पुनः शहर की ओर भाग जाता है ।

बाला दूबे द्वारा प्रणीत उपन्यास "मकान दर मकान" में भी इस जातिगत संस्तरण को रेखांकित करने वाली एक घटना आयी है । सुरे भंगी की लड़की किस्नो ग्यारसिया चमार के लड़के द्वारका से प्रेम करती है । विवाह के लिए दोनों जातियों का जातिगत अभिमान बीच में आता है । दोनों ही जातिवाले अपनी अपनी जाति में विवाह करना चाहते हैं । चमार कहते हैं---" भला हमारा लड़का भंगिन के साथ ब्याह करेगा ? " तो दूसरी तरफ भंगी कहते हैं--" हमारी लड़की चमारों में नहीं जा सकती । अपनी जाति के लड़के के साथ ही उसके हाथ पीले कराएंगे ।" 41

यहां एक विचारणीय प्रश्न उठता है कि जब दलित जाति की बहन-बेटियों के साथ ऊंची-जाति के लोग यौन-संबंध रखते हैं तो उन पर कोई सातवां आसमान नहीं टूट पड़ता और जब कोई दलित जाति का व्यक्ति दलित जाति की कन्या से प्रेम करता है और विवाह तक करने को उद्धत होता है , वहां ये लोग "धरम" और "सामाजिक मरजादा" की बात को बीच में लाते हैं । उनकी सारी नैतिकता केवल अपने लोगों के लिए है ।

§6§ छोटी जाति की स्त्री और ऊंची जाति के पुरुष के बीच विवाह की समस्या : Hypergamy :-----

वस्तुतः यह समस्या भी अस्पृश्यता की विभावना तथा जातिवाद

के कारण अस्तित्व में आयी है । आज से सौ-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जातिगत बंधन अत्यधिक सुदृढ़ थे और लोग केवल अपनी जाति में ही विवाह-संबंध स्थापित करते थे । जाति के अन्तर्गत भी उपजातियां होती थी, "गोल" होते थे और उन्हीं में विवाह सम्बन्ध स्थापित होते थे । उदाहरणतया गुजरात में एक "पटेल" जाति है, परन्तु पटेलों में भी अलग-अलग जातियां उप-जातियां और "गोल" हैं और एक गोल के पटेल दूसरे गोल के पटेलों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध नहीं रखते । पटेलों में भी "राई" पटेल और अमीन पटेल ऊंचे पटेलों में माने जाते हैं और उनमें वैवाहिक सम्बन्ध उनके बीच ही होते हैं । इसी प्रकार वैश्य, ब्राह्मण इत्यादि अन्य सवर्ण जातियों में भी अनेकानेक उप-जातियां होती है और वैवाहिक संबंध केवल समाज उप-जाति में ही होते हैं । पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों के धार्मिक-सामाजिक आन्दोलनों के फलस्वरूप जो नई चेतना और बौद्धिकता विकसित हुई है, उसमें अब जातिगत वेदना में कुछ शिथिलता आयी है । परन्तु यहां भी एक आयाम बिलकुल स्पष्ट है कि सवर्ण जातियों में यदि पारस्परिक विवाह हो तो बहुत ज्यादा विरोध नहीं होता है । उदाहरर्णतया गुजरात में वणिक, ब्राह्मण और पटेल सवर्ण जातियों में गिने जाते हैं । अब यदि कोई पटेल लड़का ब्राह्मणं लड़की से या ब्राह्मणं लड़की किसी पटेल से शादी करे तो प्रथमतः तो विरोध होता ही है, परन्तु ऐसे संबंधों में बहुत ज्यादा विरोध नहीं होता, ये संबंध बाद में स्वीकार्य - Acceptable हो जाते हैं । परन्तु सवर्ण अवर्ण, सवर्ण-दलित या अगड़ी-पिछडी जातियों के वैवाहिक संबंधों में तो बहुत ही विरोध होता है और उन पर स्वीकृति की मोहर शायद ही लग पाती है । ऐसे सम्बन्धों में कई बार खून-खराबा भी होता है, हत्याएं भी होती हैं ।

यहां जो समस्या ली है, वह है उंची जाति के पुरूष और निम्न जाति के स्त्री के विवाह की । आलोच्य उपन्यासों में कुछ इस प्रकार के किस्से आये हैं, जहां दलित वर्ग की स्त्री ने ब्राह्मण या किसी सवर्ण जाति

के पुरूष से शादी की हो, या वह उसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध रखती हो ।

प्रेमचन्द के उपन्यास "गोदान" में सिलिया चमारिन और मातादीन के बीच इसी प्रकार के संबंध हैं । सिलिया और मातादीन के बीच वैवाहिक संबंध न होते हुए भी शारीरिक संबंध हैं । सिलिया एक प्रकार से मातादीन की "रखैल" है । सिलिया और मातादीन के बीच सब प्रकार के संबंध हैं , परन्तु सिलिया मातादीन की रसोई में नहीं जा सकती, सारी मर्यादा रसोई और खान-पान में आ जाती है, परन्तु चमार लोग जब मातादीन के मुंह में हड्डी डालकर उसे भ्रष्ट कर डालते हैं, तब वह मर्यादा भी टूट जाती है । प्रेमचन्द ने इसका बड़ा सटीक वर्णन किया है । मानो इस "हड्डी" ने धर्म के मूल तत्व को ही विनष्ट कर दिया है । यथा-- "जिस मर्यादा के बल पर उसकी रसिकता और घमंड और पुरूषार्थ अकड़ता फिरता था, वह मिट चुकी थी । उस हड्डी के टुकड़े ने उसके मुंह को ही नहीं उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया था । उसका धर्म इसी खान-पान, छूत-विचार पर टिका हुआ था । आज उस धर्म की जड़ कट गई । अब वह लाख प्रायश्चित करे, लाख गोबर खाए और गंगाजल पिए, लाख दान-पुण्य और तीर्थ-व्रत करे, उसका मरा हुआ धर्म जी नहीं सकता।.. ... आज से वह अपने घर में ही अछूत समझा जायगा... एक क्षण पहले जो लोग उसे देखते ही पालागन करते थे, अब उसे देखकर मुंह फेर लेंगे । वह किसी मंदिर में भी न जा सकेगा, न किसी के बरतन - भांडे छू सकेगा ।"[42]

डॉ० रामदरश मिश्र के उपन्यास "जल टूटता हुआ" में कुंजू ठाकुर तथा बदमी चमारिन के संबंधों की बात आती है । कुंजू ब्राह्मण -ठाकुर है और बदमी चमारिन है, किन्तु दोनों का प्रेम-सम्बन्ध अनैतिक एवं अवैध संबंध न रहकर शुद्ध सामाजिक प्रेम की सीमा को छूता हुआ दृष्टिगोचर होता है । कुंजू और बदमी के बीच में शारीरिक संबंध भी और इन संबंधों के फलस्वरूप बदमी गर्भवती होती है । तब कुंजू भरी सभा में सब के बीच साहस

पूर्वक यह स्वीकार करता है कि बदमी के पेट में जो बालक है, वह उसका है । इस प्रकार हमारे समाज में जो परिवर्तन आ रहे हैं उसका सकारात्मक पक्ष यहां दिखाई पड़ता है । प्रस्तुत उपन्यास में सतीष और कुंजू ये दो ऐसे सवर्ण पात्र हैं, जिनकी सहानुभूति दलितों के साथ है । बाढ़ के पानी में बदमी जब बहने लगती है तो नींच जाति की होने के कारण कोई उसे बचाने की ओर ध्यान नहीं देता जैसे दलितों का जीवन जानवरों से भी गया बीता हो । इसके विपरीत कुंजू ठाकुर के मन में मानव-मानव के प्रति भेदभाव नहीं है । वह अपने प्राणों को संकट में डालकर बदमी को बचा लेता है, इतना ही नहीं बाद में समय आने पर समाज के सन्मुख छाती ठोंक कर बदमी को सदा-सदा के लिए अपना भी लेता है । परन्तु कुंजू बदमी का यह प्रसंग उपन्यास के अन्त में आया है, अतः उसके पीछे की परिणतियों का वर्णन उसमें नहीं है । कोई सवर्ण युवक यदि दलित स्त्री को अपनी पत्नी का दरज्जा देता है, तो बाद में उसकी क्या स्थिति होती है, वह "गोदान" में भी नहीं बताया है और "जल टूटता हुआ" में भी नहीं बताया है । इस वस्तुस्थिति का चित्रण हमें गोपाल उपाध्याय द्वारा प्रणीत उपन्यास "एक टुकडा इतिहास" में उपलब्ध होता है ।

"एक टुकड़ा इतिहास" कुमाऊं प्रदेश के परिवेश को उद्घाटित करता है । उपन्यास की नायिका चनुली (चंदी देवी) डूम जाति की आठवीं कक्षा तक पढ़ी हुई एक सुशील सुंदर कन्या है । उसके यौवन पर मुग्ध होकर ब्राह्मण युवक कान्तमणि उससे विवाह करके अपने घर ले आता है । परन्तु उसके बाद समाज के अमानवीय व्यवहारों का जो सिलसिला शुरू होता है, उससे अन्ततः कान्तमणि भी टूट - बिखर जाता है । उसे समाज से बहिष्कृत किया जाता है । कोई उससे व्यवहार नहीं रखता । चनुली जब नल पर पानी भरने जाती है तो गांव की औरते उसका घड़ा फेंक देती हैं । चनुली गांव भर की आंखों में किरकिरी बनी हुई थी । जब खाली घड़ा सिर पर रखकर वह लौट आती है तो कान्तमणि का खून भी खौल उठता है ।

किन्तु गांववालों के सामने वह लाचार है, कुछ कह नहीं सकता । परन्तु चनुली दरांती लेकर पानी भरने जाती है और सबको ललकारते हुए कहती है --" जिसने पिया हो अपनी मां का दूध वह आए अब मेरे नौले पर मुझे पानी भरने से रोकने के लिए । मैं भी नरूआ की लड़की नहीं अगर इसी दरांती से टुकड़े-टुकड़े करके गिण्डा न दूं । मुझे तो मरना ही है, पर पूरा गांव लेकर ही न मरूं तो जार और पातर की लड़की बताना मुझे ।" 43

परन्तु रात-दिन के इस संघर्ष के सामने कान्तमणि टूट जाता है । कान्तमणि की इस टूटन को लेखक ने निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यंजित किया है —" चनुली ने चारपाई पर सूखे पेड़ के काट दिए तने की तरह गिरते हुए कान्तमणि को देखा और वह उसकी सारी पीड़ा को स्वयं अनुभव कर रही थी । ..... इस टूटते हुए आदमी को समेटने के प्रयास चनुली बार-बार करती रही थी कि वह अपने अपनत्व और ममत्व से उसे हमेशा सराबोर रखकर सारी कमजोरियों, कमियों या गलतियों पर सोचने का कम से कम समय दें ।... वह यह भी जानती है कि आज, कल या परसों तक ही नहीं, यह अपमान , यह तिरस्कार, यह उपेक्षा पूरी जिन्दगी उन्हें झेलनी पड़ेगी और उनकी अपनी जिंदगी तक ही नहीं बल्कि उनके बाद उनके बच्चों को भी झेलनी पड़ेगी । इस मूर्ख रूढ़िग्रस्त समाज में इसके अलावा कोई चारा नहीं है बच सकने का ।" 44

अन्ततः कान्तमणि पंचों को दो हजार रूपये देकर, उन्हें हाथ - जोड़कर उसे पुनः अपनाने की प्रार्थना करता है । इसके लिए वह अपने बच्चे और पत्नी का भी परित्याग करने को तैयार हो जाता है । यथा -- " जैसी पंचों की राय हो आप लोग अगर अब भी मुझे अपनाने को तैयार हैं तो मैं चनुली और रतन को छोड़ सकता हूं । मुझे अब तिरस्कृत न रखा जाय ।" 45

पंचों के निर्णय के मुताबिक कान्तमणि पत्नी व बच्चे को छोड़ देता है । चनुली उसके लिए बहुत संघर्ष करती है, पर उसकी एक नहीं चलती।

आगे चलकर चनुली एक गांव में मास्टर नी बन जाती है, परन्तु वहां भी उसका बहिष्कार होता है, क्या बीढ़-ब्राह्मणों के बच्चे डूमणी से विद्या - दान लेंगे ? उसके बाद वह हरिजन नेता मुंशी राम जी से मिलती है। मुंशी राम जी की प्रेरणा से वह हरिजन महिलाओं में जागृति लाने का कार्य शुरू करती है। राजकारण में पड़कर वह चनुली से चंदी देवी हो जाती है। बच्चों की शिक्षा के लिए वह अपने क्षेत्र में समता आश्रम की स्थापना करती है। एक दिन चनुली को खबर मिलती है कि पेड़ पर से गिरने से कान्तमणि को काफी चोट पहुंचती है। जाति वाले सभी उसकी मृत्यु की राह देख रहे थे कि कब वह मरे और कब वे उसकी जमीन-जायदाद हडप लें। तब चनुली वहां जाकर उसे रानी खेत के अस्पताल में दाखिल कराती है। कान्तमणि थोड़े समय के लिए बच जाता है, वह चनुली से माफी मांगता है और अन्त समय में उसे पुनः अपनी बीबी और रतन को अपना पुत्र स्वीकार करता है, वकील को बुलाकर वह अपनी जमीन-जायदाद तथा घर-बार उसके नाम कर जाता है। कान्तमणि की मृत्यु के उपरांत चनुली उसके ही मकान में रहने लगती है, तब कान्तमणि के जाति-बिरादरी वालों को ये बात रूचती नहीं है। वे उसे डराने-धमकाने और भंगाने के बहुतेरे प्रयास करते हैं परन्तु चनुली अब पहले वाली चनुली नहीं रही। वह हरिजन नेत्री चंदी देवी है। इन सबका वह डटकर मुकाबला करती है। वह कहती है —" "कान खोलकर सुन लो। मैं डूमणी हूं। चाहे बिढणी, पर कान्तमणि की बीबी हूं और इसी घर में रहूंगी। रहूंगी और रहूंगी। देखती हूं तुम्हारे बाजुओं में कितना जोर है। अपने पति के घर में हूं। कोई तुम्हारी देहरी में नहीं पड़ी हूं। तुम होते कौन हो मेरे पति की जमीन हड़पने वाले। मेरे घर में, मेरे खेत में जाओगे तो रतन की कसम खाकर कहती हूं गरदन मरोड़कर रख दूंगी। ये याद रखना।" [46]

कान्तमणि के घर में रहने के कारण उसकी अपनी जाति के लोग भी उससे नाराज रहते हैं। कान्तमणि के घर में रहते हुए वह हरिजन आन्दोलन

चलाती है । हरिजनों के मंदिर प्रवेश के लिए वह उनमें क्रांति की चेतना फूंक देती है । इसके लिए वह लाठियां भी खाती है और जेल भी जाती है । चिकित्सा-जांच से पता चलता है कि लोगों ने उसकी जननेंद्रिय पर भी लाठियां चलाई थी । अन्ततः उसे कैन्सर हो जाता है और वह कान्त-मणि के घर में आकर रहने लगती है । वह अपने ही घर में मरने की इच्छा प्रकट करती है —" मैं उसी घर में मरना चाहती हूं जहां रतन के बाज्यै मुझे सुहागन बना कर लाए थे । उस घर में डोली तो नहीं आ सकी पर अब उस घर से ही अर्थी में निकलूं, यह इच्छा जरूर है ।" [47]

चनुली लाश को जलाने भी कोई नहीं जाता । न डूम न बिढ । रधिया, रतन, जोहार सिंह और शीषराम के कन्धों पर अर्थी उठाई जाती है । जलाने के लिए लकड़ियां तक नसीब नहीं होती । अतः उसे जमीन में दफ्न कर दिया जाता है । जहां उसे दफ्न किया गया है, बाद में आश्रम के बच्चे एक चबूतरा बना देते हैं । रतन अपनी मां के अधूरे काम को आगे बढ़ाने का प्रण लेता है । वह कहता है —" इजा ! डूम तो आज भी डूम ही रह गए हैं । आज भी वे अछूत हैं । फिर तूने खामख्वाह अपनी जान क्यों दे दी । इजा तू नहीं बदल पाई इन लोगों । मगर ये बदलेंगे इजा, समय इन्हें बदलने को मजबूर कर देगा । सिर्फ तू नहीं देख पाएगी इजा ।.. तू.... ।" [48]

चंदी देवी का यह संघर्ष उसकी मृत्यु के साथ समाप्त नहीं हो जाता । उसका बेटा रतन जब इस लड़ाई को आगे चलाने की बात करता है, तब शीषराम जी उसे डांटते हुए कहते हैं —" रतनिया रे मां की तरह पागल न बन । ले पिण्ड दान दे उसे । तर्पण दे उसे ।" [49] तब इसका जबाब देते हुए रतन कहता है—" दे दिया बुबज्यू । बस दे दिया । कहा न कहानी अब यहां से शुरू हो रही है ।" [50]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में चनुली के माध्यम से जीवन-संघर्ष की गाथा का आलेखन हुआ है, जहां एक दलित जाति की स्त्री सवर्ण युवक

से विवाह करती है ।

शैलेश मटियानी के उपन्यास "रामकली" में इस समस्या का एक दूसरा आयाम दृष्टिगोचर होता है । रामकली का बाप मरते हुए उसे अधेड़ उम्र के बसंता को सौंप जाता है । रामकली अत्यंत सुंदर है । बसंता अधेड़ उम्र का बदसूरत और कंजूस व्यक्ति है । अतः रामकली को यह बराबर लगता है कि उसके जैसी सुंदर भुवनमोहिनी स्त्री के लिए बसंता का बाडा बहुत छोटा है । अतः अपने वैभव-विलास के सपनों को पूरा करने के लिए रामकली कमला पहलवान और अमोलकचंद ठेकेदार के यहां पहुंचती है । दोनों उसका यौन-उपभोग करते हैं । परन्तु कोई उसे ब्याहता औरत का दरज्जा नहीं देते । पहले वह कमला पहलवान के पास जाती है । जब वह देखती है कि उसकी नियति में खोट है , तब वह अमोलकचंद ठेकेदार के यहां जाती है । बसंता रामकली को इन बातों के लिए रोकता नहीं है । बीच-बीच में रामकली अपने बच्चे को मिलने के लिए बसंता को मिलने आती है । यहां रामकली की व्यक्तिगत निष्ठा का हमें परिचय होता है । वह जिस पुरुष के साथ रहती है, उसके साथ उसका व्यवहार पूर्णतया प्रामाणिकता का होता है । जब बच्चों को मिलने के लिए वह बसंता के पास आती है, तब वह देर रात तक ठहरती है , बसंता के साथ दारू भी पीती है, परन्तु उसे अपने पास फटकने तक नहीं देती । वह अमोलकचंद को धोखा नहीं देना चाहती । अमोलकचंद ने रामकली को विवाह का वचन दिया था, पर वह उसे टाल रहा था । वस्तुतः वह रामकली को "रखैल" के रूप में रखना चाहता है । बल्कि उसे रखैल भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि एक बार अपने व्यावसायिक फायदे के लिए वह अपने दो-चार साथियों को अपने बंगले पर ले आता है । अमोलकचंद सोचता था कि उसके साथी भी रामकली के साथ मजा लूटेंगे । जब रामकली को अमोलकचंद की इस "खारी दियानत" का पता चलता है तब वह उसे फटकार देती है --" हरामी, बिना अपनी मरजी के तो मैंने अपने ब्याहते को भी नहीं छूने दिया, तू ससुरा कौन होता

है साले ।" [51] और ऐसा कहकर जिन्दगी की वास्तविकता को समझते हुए रामकली पुनः अपने ब्याहता पति बसंते के पास चली जाती है । यहां कमला पहलवान या अमोलकचंद भले रामकली को अपनी पत्नी न मानते हों, परन्तु रामकली तो उनको अपना शौहर मानती ही थी और वह उन संबंधों को उसी रूप में लेती है । यहां एक बात स्पष्ट हो जाती है कि कोई निम्न जाति की स्त्री यदि किसी ऊंची जाति के पुरुष के पास रहती है , तो वह तो उसे अपना पति स्वीकार कर लेती है, परन्तु सवर्ण पुरुष उसे केवल अपनी वासना-विलास का खिलौना मात्र ही समझते हैं ।

ब्रजभूषण के उपन्यास "मंगलोदय" का नायक डॉ0 उदय एक आदर्शवादी पात्र है । प्रस्तुत उपन्यास में अछूत कन्या मंगला का परिणय डॉ0 उदय से करवाया जाता है । मंगला और उदय बचपन के साथी थे, बड़े होने पर उनमें परस्पर प्रेम हो जाता है । गोपीनाथ, वंशी महाराज, पुजारी, राम शरण, रामनाथ जैसे लोगों के विरोध के बावजूद उदय मंगला से विवाह करता है ।

रांगेय राघव कृत "कब तक पुकारूं" में इस आयाम को एक दूसरे तरीके से प्रस्तुत किया गया है । उसमें उपन्यास के नायक सुखराम की मां तो करनट है, परन्तु उसका बाप ठाकुर है । वह सुखराम की मां के सौंदर्य पर ऐसा लट्टू हो जाता है कि अपनी जात-बिरादरी छोड़कर करनटों का जीवन ही अंगीकृत कर लेता है । परन्तु अपने ठाकुर संस्कारों के कारण वह कभी-कभी करनटों को घृणा की दृष्टि से देखता है । वह अपने बेटे सुखराम को भी यही पाठ पढ़ाता है कि वह करनट नहीं, अपितु ठाकुर है । तब सुखराम की मां कटार चमचमाती हुई उसके पास आती है और कटार उसके सीने पर रखकर कहती है कि " नहीं तू मेरा बेटा है तू मेरा बेटा है तू इसका बेटा नहीं है तू ठाकुर नहीं है ।" [52] दांत पीसकर वह सुखराम के बाप से कहती है —" तू जिस पत्तल में खाता है उसी में छेद करता है । तेरा बाप जब मरा था, तब तू छोटा ही था मेरे बाप ने तुझे पाला था ।

कितने नट मुझे चाहते थे पर मैंने तेरा ही हाथ पकड़ा । क्या मैं जानती थी कि तू मुझसे नफरत करता रहेगा । तूने मुझे कभी प्यार नहीं किया जालिम । तूने मेरे पेट से एक ठाकुर लेने के लिए, अपना सपना पूरा करने के लिए मुझसे प्यार का स्वांग रचा था ? तेरे लिए मैंने अपने आपको मिटा दिया । दरोगा हरनाम मुझे अपनी रखैल बनाकर xxxxxx सारे आराम देने को कहता था, पर तेरे लिए मैंने उसे ठुकरा दिया । जब दरोगा करीमखां ने तुझे गिरफ्तार कर लिया था, तब मैंने जीवन का सौदा करके तुझे छुडाया था । जब अकाल पड़ा था तब तेरे और तेरे बच्चे के लिए गांव में जाकर परायों के संग रातें काटकर कमाकर लाती थी ताकि तुझे बचा सकूं । और मेरे नटों ने मुझसे कभी घिन नहीं की पर मुझसे तू मन ही मन नफरत करता था... नहीं सुखा । मेरे राजा । आज असली बात बताती हूं । तू इसका बेटा नहीं है । तू नट है क्योंकि मैं नहीं बता सकती कि तू किसका बेटा है, जैसे कोई नटनी नहीं बता सकती ।" [53]

इस प्रकार यहां हम देख सकते हैं कि करनटों में वर्चस्व नटनियों का ही होता है । कोई पुरूष यदि अपने उच्च वर्ण का अभिमान करे तो वे उसे पसंद नहीं करती हैं । जिसे दूसरी जातियों में कुलक्षण कहा जाता है, उसे यहां सुलक्षण कहते हैं । यौन-स्वच्छंदता करनटों के लिए मर्यादा है, जो अन्य जातियों से सर्वथा विपरीत है । एक स्थान पर प्यारी सुखराम से कहती है --" देख मैं भैगिन चमारिन नहीं जो मरद की गुलाम बनकर रहूं । मैं तो खेलूंगी पर मेरा मन तो तेरा है । जिस दिन मन तुझसे हट जाएगा, मैं तुझे छोड़ कर चली जाउंगी ।" [54] इसलिए सुख राम भी अपने ठाकुरपने का रूआब प्यारी पर नहीं जमा सकता था । प्यारी के आगे उसकी एक न चलती थी ।

§7§ उंची जाति की स्त्री और छोटी जाति के पुरूष के विवाह की समस्या : Hypo : ---

उंची जाति की स्त्री और छोटी जाति के पुरूष के बीच अवैध यौन संबंध तो पाए जाते हैं । ये संबंध चोरी-छिपे के होते हैं । गांव में उंची जाति के पुरूष दलित स्त्रियों से अवैध संबंध रखते हैं । यह एक आम बात है । बल्कि उसे वे अपना अधिकार समझते हैं । लोग उसको अधिक गंभीरता से भी नहीं लेते । उसकी कोई दाद-फरियाद भी नहीं सुनता । परन्तु निम्न जाति के पुरूष और उच्च जाति की स्त्रियों के यौन-संबंधों को प्रायः छिपाया जाता है । उसे समाज में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता । खास करके जिस घर की वह स्त्री होती है, उस घर के लोगों को तो यह डूब मरने जैसी बात लगती है, परन्तु ऐसा होता ही नहीं है ऐसा नहीं है । मानव की मूलभूत वृत्तियाँ तो एक समान ही होती हैं । वह जाति और वर्ण को नहीं देखती । कहा भी गया है --"प्रेम न जाने जात कुजात" । जिस प्रकार दलित स्त्रियां उंची जाति के यहां काम करती हैं, ठीक उसी प्रकार निम्न जाति के पुरूष भी उनके यहां हलिया, बंधुवा मजदूर के रूप में काम करते हैं । अतः उनका संपर्क उंची जाति की बहन, बेटियों, बहुओं से होते हैं और उसमें कभी-कभी आंखे लड़ जाती हैं तो प्रेम-संबंध भी स्थापित हो जाते हैं । डॉ० रामदरश मिश्र के उपन्यास "सूखता हुआ तालाब" तथा "जल टूटता हुआ" में इस प्रकार के अवैध यौन संबंधों के कई उदाहरण मिलते हैं । परन्तु ये संबंध केवल यौन-तुष्टि तक सीमित रहते हैं, उनकी विवाह में परिणति नहीं होती । उंची जाति की स्त्री और नीची जाति के पुरूष के बीच वैवाहिक सम्बन्ध-- पति-पत्नी के संबंध बहुत कम पाए जाते हैं । ऐसे किस्सों में या तो पुरूष की हत्या कर दी जाती है या फिर वह उसे भगाकर कहीं अन्यत्र ले जाता है, जहां कोई उनको जानता न हो ।

अमृतलाल नागर कृत उपन्यास "नाच्यौं बहुत गोपाल" में हमें इस प्रकार का वैवाहिक संबंध मिलता है । निर्गुण एक ब्राह्मण कन्या है । उसका बाप मर गया है मां जैसे-तैसे उसे पालती है । गरीबी के कारण निर्गुण का ब्याह वह अपनी जाति के बूढ़े मसुरिया दीन के साथ कर देती है ।

निर्गुण गोरी है, सुंदर है ह , युवान है । मसुरिया दीन के मुंह से लार टपकती है । निर्गुण के यौवन को छक कर भोगने के लिए वह निर्गुण की मां को खूब सारे पैसे भी देता है । मसुरिया दीन तो अपनी वासना बुझा लेता है पर निर्गुण तड़पती रह जाती है । मसुरिया दीन निर्गुण में कामाग्नि को प्रज्वलित तो करता है, पर उसे बुझाने का सामर्थ्य उसमें नहीं है । मसुरिया दीन को भी यह स्थिति मालुम है, अतः वह निर्गुण को एक कमरे में बंद रखता है । बाहरी दुनिया से उसका कोई संपर्क नहीं हो पाता, ऐसे में निर्गुण की कामाग्नि और भभकती है और वह यौन-तृप्ति के लिए छटपटाती है । मनुष्य के नाम पर उसकी हवेली में केवल मेहत - रानी से उसका परिचय होता है, जो वहां सफाई काम के लिए आती थी । एक बार जब मेहतरानी बीमार पड़ जाती है तब उसका किशोर अवस्था का बेटा मोहना उस कार्य के लिए आता है, निर्गुण मोहना को अपने मोह जाल में फंसाती है उसे "छोकरे से" पुरूष बनाती है । युवान पुरूष के साथ का समागम क्या होता है और उसका स्वाद क्या होता है , यह निर्गुण अब समझने लगी है । अतः मोहना के बिना वह छटपटाती है, उसे लगता है कि अब वह मोहना के बिना रह नहीं सकती । मोहना के लिए भी वह प्रथम प्यार था । अतः एक दिन मोहना के साथ निर्गुण भाग जाती है । मोहना की मां उसे अपने पास रखने को तैयार नहीं हैं क्योंकि मसूरिया दीन की पहुंच पुलिस तक है और ऐसी स्थिति में उसके परिवार पर आफत आ सकती है । निर्गुण उसके लिए आफत का परपोटा ही है । अतः मोहना उसे लेकर अपनी भाई के पास जाता है और निर्गुण को भी वहीं रखता है । इस प्रकार ब्राह्मण कन्या निर्गुण मेहतरानी निर्गुण्या बनती है । परन्तु मेहतरानी बनने के लिए उसे अनेक यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता है ।

ऊंची जाति की स्त्री जब छोटी जाति में जाती है, तब उसके सामने अनेक संस्कारगत समस्याएं आ खड़ी होती हैं , उसमें भी यदि पुरूष ऊंचे पद या होददे पर हो तब तो किसी तरह निर्बाह हो जाता है परन्तु

पुरूष की आर्थिक स्थिति यदि अच्छी न हो तो ससुराल में भी उसका स्वागत नहीं होता है । छोटी जाति की स्त्री तो "कमेरी" होती है । वह मेहनत मजदूरी का काम भी करती है, परन्तु जब उंची जाति की स्त्री ऐसे परिवार में आ जाती है तब परिवार के दूसरे सदस्यों को वह "शोभा के गांठिये" सी लगती है । उसमें भी यदि उस स्त्री के कारण उनके परिवार पर कानून या पुलिस की कोई आफत आने वाली हो, तब तो घर वाले एक प्रकार से उसका तिरस्कार ही करते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास की निर्गुण्या को भी इन यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता है, उसकी ममिया सास का कहना है कि ब्राह्मण कन्या बनकर वह मोहना के साथ नहीं रह सकती उसे मोहना के साथ रहना हो तो मेहतरानी बनना ही होगा । और उसे जबर्दस्ती मेहतरानी बनाया जाता है । वह रात निर्गुण के लिए सबसे घिनौनी रात थी । मोहना और मामू चले गए तब माई घर में ही टट्टी गई और निर्गुण से कहा कि उसे उठाकर नाली में फेंक आ । निर्गुण के मना करने पर उसे खूब मारा-पीटा जाता है । कई-कई दिनों तक उसे खाना नहीं दिया गया । एक दिन जब मरद चले गए तो उसकी माई उठी और कुण्डा बंद कर दिया । निर्गुया के सामने निर्लज्ज होकर वह मोरी पर हगने बैठ गई और फिर झाड़ू पुंजे की ओर इशारा करके निर्गुण को कहा गया कि इसे कमाकर टोकरे में डाल । निर्गुण के मना करने पर माई उसका झोंटा खींचते हुए कहती है —" मेरे बेटे की जिनगानी खराब कर सकती है हरामजादी और यह नहीं कर सकती ? अरे तू क्या तेरा बाप भी उठाएगा, चल उठा ।" [55]

इस बात का जब मामू को पता चलता है तो वे पहले तो तैश में आकर मामी को धमकाते हैं किन्तु बाद में निर्गुण से कहते हैं —" माई का कहना ठीक है । तुम्हें हमारी पुश्तैनी काम की आदत तो डालनी ही होगी इसके बिना बिरादरी में मुंह कैसे दिखाओगी ? जिस घर में आई हो उसके कायदे-कानून से नहीं चलोगी तो बदनामी फैलेगी कि जरूर किसी और जात

की औरत है भगा के लाया है । [56]

मोहना भी उन्हीं लोगों का पक्ष लेते हुए कहता है —" सुनो निर्गुण, हंस के या रो के करना तो तुम्हें यही काम पड़ेगा । बच के कहां जाओगी मेरी जान । लो उठो खाना खा लो ।" [57]

आगे निर्गुण इस संदर्भ में कहती है —" एक दिन , दो दिन, तीन दिन वो हरामजादी वहीं हगती रही । मैं रोज मार खाती थी, भूखी रहती थी । भूखी रहने पर भी रोज रात में मुझ औरतक्रे को अपने मरद को सुख भी देना पड़ता था । जिस सुख के लिए यह दिन देखा था वही सुख तब नरक के दण्ड-सा भोग रही थी । मोहना भी ऐसा निर्दयी था कि न खाने को पूछे न पीने को, अपना सुख ले ले और सो जाए । मोहना ने सच ही कहा था कि मैं डरपोक हूं जान नहीं दे सकती ।... मन की हिचक में बिना खाए-पीए वह मेरा छठा रोज था । मैं हरे तरह से टूट गयी * चुकी थी । सातवें रोज मुंह अन्धेरे उठी, नाक पर पट्टी कस कर बांधी और पूरे हठ के साथ मेहतरानी बन गई ।" [58]

यहां एक तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे कि जिन निम्न जातियों मेंककन्याओं का अभाव होता है, वहां यदि इस प्रकार का विवाह संबंध होता है तो वर पक्ष वाले बहू को हाथों हाथ उठा लेते हैं । उसे बहुत सम्मान भी देते हैं । उसकी ऊंची जाति को लक्ष करके उससे कोई छोटा काम भी नहीं करवाते । परन्तु यहां स्थिति विपरीत है । मेहतर समाज में मेहतर लड़कियों की खोट नहीं होती । दूसरे छोटी जातियों में शारीरिक श्रम करके ही गुजारा करना होता है, अत अतः वे लोग "कमेरी" लड़की को लाना पसंद करते हैं । मोहना यदि मेहतरानी लाता तो उसकी मां को एक हाथ बटाने वाला मिलता और इस तरह से वह खुश होती । निर्गुण तो उसके किसी काम की नहीं है, अतः वे लोग उसे घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं । उसे गंदी गालियों से नवाजते हैं ।

इस प्रकार के विवाह की समस्या शैलेष मटियानी द्वारा प्रणीत

"नाग वल्लरी" में भी उपलब्ध होती है । उपन्यास में कुमाऊ प्रदेश के रायछीना कसबे के भोगाव नामक गांव को लिया गया है । इस गांव के कृष्णा मास्टर प्रयाग विश्वविद्यालय के स्नातक हैं । और भोगांव के स्कूल में अध्यापन कार्य कर रहे हैं । कृष्णा मास्टर के आकर्षक प्रभावशाली व्यक्तित्व, उनकी विद्वता एवं चरित्र से आकर्षित होकर विधवा ठकुरानी गायत्री देवी उनसे विवाह कर लेती हैं । गायत्री देवी कृष्णा मास्टर से विवाह तो कर लेती हैं, परन्तु उनके समूचे परिवेश को अपनाने में उन्हें हिचक होती है । जिस प्रकार "कब तक पुकारूं" में सुखराम के पिता ठाकुर होने के कारण करनटों को भीतर ही भीतर वितृष्णा की दृष्टि से देखते हैं, ठीक उसी प्रकार यहां गायत्री देवी "डूमियाले" से घिनाती है । गरीबी और गंदगी में प्रायः चोली-दामन का संबंध रहता है । डोम, चमार, भंगी आदि जाति के लोग हजारों वर्षों से भयंकर गरीब अवस्था में रहते आये हैं, अतः उनके कुछ जातिगत संस्कार बने हुए हैं । गंदगी भी उनके संस्कार का एक अंग है । गायत्री देवी की घिन का आधार यही है । गायत्री देवी कृष्णा मास्टर को चाहती है और कृष्णा मास्टर तो सुशिक्षित होने के कारण खूब साफ-सुथरे रहते हैं । अतः कृष्णा मास्टर के साथ रहने में गायत्री देवी को कोई आपत्ति नहीं है, कृष्णा मास्टर यदि इलाहाबाद, लखनऊ आदि शहर में रहते तो कोई समस्या ही नहीं थी, परन्तु कृष्णा मास्टर एक आदर्शवादी युवक हैं, जिस गांव में उनकी प्राथमिक ,माध्यमिक शिक्षा-दीक्षा हुई उसी गांव को वे अपना कर्मक्षेत्र बनाना चाहते हैं, इतना ही नहीं वे अपने जन्मस्थान और जातिबंधुओं को भी नहीं छोड़ते और "डूमियाले में ही रहते हैं । गायत्री देवी कृष्णा मास्टर से तो नहीं घिनाती, परन्तु उनके अन्य जाति बंधुओं से उन्हें भयंकर घिन है । वह उनके हाथों का छुआ हुआ खाना भी खाने को तैयार नहीं है । कृष्णा मास्टर इस संदर्भ में उदार है । वे गायत्री देवी के जन्मगत और परिवेशगत संस्कारों को समझते हैं और सोचते हैं कि शनैः शनैः गायत्री देवी इस समाज को स्वीकार करने

लगेगी । परन्तु उपन्यास का एक पात्र सेवाराम जो कृष्णा मास्टर से जलता है और प्रदेश के भूतपूर्व विधायक कल्याण ठाकुर का चमचा है, गायत्री देवी की इस बात को राजनीतिक रंग देने की चेष्टा करता है । कल्याण ठाकुर दलितों का वोट बटोरने के लिए उनसे ऊपरी तौर पर सहानुभूति रखते हैं परन्तु भीतर से वे दलित जातियों को धिक्कारते हैं । उनको गायत्री देवी और कृष्णा मास्टर का विवाह एक आंख नहीं सुहाया है । अतः वे सेवाराम को चढ़ाते हैं । सेवाराम कहता है—" जो औरत हम शिल्पकारों की बिरादरी में सामिल होकर भी हमारे हाथों का छुआ खाने को तैयार नहीं, वह ठकुरानी म राहीबा नहीं, ब्राह्मणी टाहिबा हो-- ऐसी हरिजन विरोध औरत के हाथों का छुआ हम भी नहीं खा सकते ।"[59]

डॉ० आरिग पुडि के उपन्यास "अभिशाप" में भी इस समस्या को आंकलित किया गया है । "अभिशाप" के कथानायक पदमनाभन अछूत जाति के हैं, परन्तु अपनी लगन, मेहनत चतुराई और अवसरवादिता के बल पर उन्नति के सोपानों को सर करते हुए आई.ए.एस. आफीसर बन जाते हैं, तब स्नेहा नामक एक युवति से विवाह करते हैं । स्नेहा स्वयं कर्मकाण्डी ब्राह्मण परिवार से है । ब्राह्मण होते हुए भी वह अछूत और दलित वर्ग से जुड़ती थी है । यहां नागवल्लरी से विलोमी प्रकार की स्थितियां हैं । स्वयं पदमनाभन अपने वर्ग से कतराते हैं, जबकि उनकी पत्नी स्नेहा दलितों और अछूतों की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर देती है ।

§4§ सवर्ण-दलित मानसिकता की समस्या :---

"सवर्ण दलित मानसिकता" यह शीर्षक विरोधाभाषी लग सकता है । दलित दलित होता है । कोई दलित सवर्ण कैसे हो सकता है ? वस्तुतः यह शीर्षक व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है । यहां दलित सवर्ण उसे कहा गया है, जो स्वतंत्रता के बाद दलितों को मिली हुई सुविधाओं से , पालित-पोषित होकर सम्पन्न हो गया है और स्वयं को सवर्णों की

कोटि में रखता है । सरकारी लाभों को भुनाने के लिए तो वह दलित हो जाता है, परन्तु उसका व्यक्तिगत जीवन सवर्णों जैसा ही होता है, इतना ही नहीं वह सवर्णों की जीवन पद्धति को भी अपना लेता है और अपनी जाति-बिरादरी के लोगों से घृणा करता है । शैलेष मटियानी कृत "नाग-वल्लरी" उपन्यास में ललितराम, तिलकराम आदि पात्र दलित वर्ग के हैं, परन्तु सरकार की आरक्षण की नीतियों का लाभ लेते हुए वे कमिश्नर तथा डी.एम. हो गये हैं । गायत्री देवी की भांति तिलकराम भी "डूमियोल" से घिनातेश्रे हैं । वे जब दौरे पर आते हैं तो यथासंभव अपनी जाति-बिरादरी के लोगों से मिलना टालते हैं । डॉ० आरिग पुडि के उपन्यास "अभिशाप" के कथानायक पद्मनाभन भी अछूत वर्ग से हैं । पद्मनाभन एक प्रखर बुद्धिवादी और बुद्धिशाली व्यक्तित्व के धनी हैं । परिश्रम तथा मेधावी प्रतिभा के कारण वे आई.ए.एस. ऑफीसर के रूप में चुन लिये गये हैं । और निरंतर प्रगति करते हुए भारत सरकार में उच्चातिउच्च स्थानों तक पहुंचते हैं । परन्तु इस उपलब्धि के बाद वे अपनी जाति और वर्ग से कट जाते हैं । वे अपने परिवार से कट जाते हैं । अपनी इस प्रवृत्ति को न्यायी-प्रमाणित करने के लिए वे कहते हैं --"कि किसी ने कभी मेरी मदद नहीं की, तो मैं उनकी मदद क्यों करूं और उनको मुझसे किसी मदद की उम्मीद भी नहीं करनी चाहिए ।" 60 यहां पद्मनाभन का रवैया नितांत स्वार्थी और सवर्णवादी रवैया है । पद्मनाभन को सोचना चाहिए कि वे जिस जाति से आये हैं, वह इतनी दरिद्रावस्था में है कि कोई क्या किसी की मदद कर सकता है । परन्तु अब जब वे अपने बांधवों को मदद करने की स्थिति में आ गये हैं, तो उन्हें अपनी जाति के लोगों की सेवा करनी चाहिए उनको ऊपर उठाने में अपना योगदान देना चाहिए । माता की बीमारी में पद्मनाभन नहीं जाते उनकी पत्नी स्नेहा जाती है । स्नेहा का यह जाना भी उनको अच्छा नहीं लगता । वे सोचते हैं --"इससे तो यही साबित होगा कि उनका पति कमीना है, जो अपनी माता को भी देखने न आया । वह मुझ पर ही चोट

कर रही हैं, अगर वह इतनी अच्छी है तो दुनिया की नजर में मुझे बुरा बनाने की क्यों जरूरत है ? और वह भी उन लोगों में जहां मैंने बचपन काटा था ।" 61 इस प्रकार स्थिति का एक पहलू यह भी है कि दलित जातियों में से उभर कर जो लोग आ रहे हैं, वे अपना एक अलग वर्ग बना रहे हैं । उनमें भी क्रमशः सवर्ण मानसिकता आ रही है, इतना ही नहीं, वे सवर्ण के रीति-रिवाजों को भी अपना रहे हैं और ऐसा करने में गर्व का अनुभव कर रहे हैं ।

§2§ पारिवारिक समस्याएं :---

यद्यपि पारिवारिक समस्याएं भी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के परिणाम हुआ करती हैं, तथापि कुछ समस्याएं जरूर ऐसी होती हैं , ? जिनका उद्‌भावक केन्द्र परिवार होता है । पारिवारिक समस्याओं के अन्तर्गत हम परिवार में उत्पन्न होने वाली समस्याओं को अर्थात् माता - पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी के संबंधों में उत्पन्न होने वाली समस्याओं को परिगणित कर सकते हैं । ये समस्याएं तो सभी वर्गों और वर्णों में होती हैं, सभी जातियों में होती हैं, मनुष्य मात्र में होती हैं । किन्तु यहां हमारा लक्ष्य केवल उन उपन्यासों तक सीमित रहेगा जो दलित चेतना से अनुप्राणित हैं, जिनमें दलित जीवन को चित्रित एवं व्याख्यायित किया गया है ।

§1§ पति-पत्नी संबंध :---

दलित जातियों में पति-पत्नी के बीच मालिक और दासी का संबंध नहीं होता । ये मेहनत मजदूरी करने वाले लोग हैं, अतः यहां दोनों मेहनत-मजदूरी करते हैं, अतः घर में वर्चस्व किसी एक का नहीं होता, बल्कि दोनों का होता है । कई बार तो यह भी पाया गया है कि पत्नी पति

पर हावी हो जाती है । "गोदान" में हम अनेक स्थानों पर देखते हैं कि धनिया होरी को डांट देती है । अमृतलाल नागर द्वारा प्रणीत उपन्यास "नाच्यो बहुत गोपाल" में मोहना की माई का जो चरित्र है, वह भी उसी प्रकार का है । मामू का दृष्टिकोण निर्गुण के प्रति कुछ उदार है, परन्तु माई के आगे उनकी एक नहीं चलती है । और अन्ततः निर्गुण को माई की बात माननी ही पड़ती है । रांगेय राघव कृत "कब तक पुकारूं ?" उपन्यास में भी सुखराम की मां और प्यारी की मां जैसी तेज तर्रार करनट स्त्रियों के चरित्र हमें मिलते हैं । सुखराम के पिता को अपने ठाकुर होने का गर्व होता है । सुखराम की मां ~~के~~ के चाहने पर भी वह करनटों से घृणा करता है, इस बात को लेकर वह उसे खरी-खरी सुनाती है । सुखराम अपने पिता के संदर्भ में कहता है —" मैंने उसे भिट दबाकर लोमड पकड़ते देखा था, वे भागते रोझ को घेर लेता था, वह तीन हाथ में कांटे फेंकती सेही को मार देता था, बिज्ज जैसे सख्त और खतरनाक जानवर को उसने सबके सामने अकेले मार डाला था ।" 62

परन्तु ऐसा शेरे दिल आदमी भी सुखराम की मां के आगे "बकरी बे" उसके सामने उसकी घिग्गी बन जाती थी । इस सन्दर्भ में सुखराम कहता है—-" मेरी मां से वह बहुत प्रेम करता था । कभी हाथ उठाकर नहीं बोलता था । जब वह शराब पीकर पराये मर्दों के साथ मस्त होकर बकती थी, तब वह उसे कन्धों पर~~xx~~ धर कर लाता था ।" 63

सुखराम के पिता में ठाकुर का खून है, परन्तु करनट स्त्री को चाहने के कारण उसने करनटों की जीवन शैली को अपना लिया है, परन्तु कभी-कभार जब ठाकुर खून उबाल मारता है, तब पति-पत्नी में थोड़ी ठन जाती है, परन्तु अन्ततः जीत नटनी की ही होती है ।

यह अनेक बार निर्दिष्ट किया जा चुका है कि दलित स्त्रियों को गांव के ऊंची जाति के लोगों के यहा मेहनत - मजदूरी का काम करना पड़ता है, अतः उनकी गरीबी और गरीबी के कारण लाचारगी की स्थिति के कारण

उनका यौन-शोषण होता है । शुरू-शुरू में शायद उसमें स्त्रियों की नामर्जी भी होती होगी, परन्तु बाद में कई बार ऐसे संबंधों को गौरवान्वित करके भी देखा जाता है । अर्थात, किसी दलित स्त्री को किसी बड़े आदमी की रखैल होने में शरमिंदगी का अनुभव नहीं होता, बल्कि वह स्वयं उसमें गौरव का अनुभव करने लगती है और किसी बड़े आदमी से संबंध होने के कारण, उन स्थितियों का लाभ लेते हुए, सत्ता का थोड़ा-बहुत स्वाद वह भी चखने लगती है । "कब तक पुकारूं ?" की सोना, "धरती धन न अपना" की प्रीतो, "मित्रो मरजानी" की मित्रो की मां, "सूखता हुआ तालाब" की हलवाहा पतराम की औरत तथा "मैला आंचल" की लगभग तमाम दलित स्त्रियाँ इस प्रकार की स्त्रियां हैं । उनके आदमियों को भी इस बात का पता होता है, परन्तु अपनी विवश अवस्था के कारण वे चुप रह जाते हैं । हो सकता है कि प्रारंभ में उनको बुरा लगता हो और उसका वे विरोध भी करते हों, परन्तु बाद में परिस्थितियों से समझौता कर लेना पड़ता है । "कब तक पुकारूं? " उपन्यास में सुखराम की औरत प्यारी कहीं खेल-तमाशा दिखाने जाती है, वहां उस ज्वार के दारोगा की नजर उस पर पड़ जाती है । प्यारी का चुलबुलापन और उसकी अलहड़ जवानी दरोगा के मन का कब्जा ले लेते हैं और प्यारी के लिए थाने से बुलावा आ जाता है । सुखराम जब उसका प्रतिरोध करता है, उसे थाने में बुलाकर बुरी तरह से पीटा जाता है । पुलिस की मार खाकर वह बेहोश हो जाता है । उसके सिर में जगह-जगह खून के चकत्ते हो जाते हैं । तब प्यारी की मां सोनू कहती है —" हां री जूते में कीलें रही होगी । तेरे बाप के ऐसे बीसियों निसान पड़े होंगे ।"[64] सोनू यह बात ऐसे कहती है जैसे कुछ हुआ ही न हो । उसके पहले भी वह प्यारी को समझा चुकी थी कि यदि वह दारोगा के पास नहीं गई तो दारोगा सुखराम को मार-मार कर उसकी खाल उधेड़ देगा । अतः प्यारी ही सुखराम को समझाती है —" तू बुरा क्यों मानता है औरत के काम में औरत को सरम नहीं होती ? मरद के काम से क्या मरद सरम

करता है ? तेरी-मेरी चाहना है । संग तो तेरे ही रहूंगी ।" 65

सुखराम को रूकना पड़ता है । वैसे दूसरे करनट इसे बिलकुल स्वाभाविक मानते हैं । उसमें उनको अयोग्य या अनुचित ऐसा कुछ भी नहीं दिखता । हो सकता है कि सैंकड़ो वर्षों से , पीढ़ी -दर-पीढ़ी यही उनकी औरतों के साथ होता रहा है इसलिए इसे अपनी नियति मानकर वे चल रहे हैं । सुखराम विरोध करता है, क्योंकि वह स्वयं को और करनटों जैसा नहीं मानता । वह खुद को ठाकुर समझता है । पर उसकी यह ठाकुरवाली हेंकड़ी भी दारोगा वाले प्रसंग के बाद खत्म हो जाती है । उसका मन हाहाकार कर उठता है । यथा —" ये दुनिया नरक है । हम गन्दे कीड़े हैं । तूने यह संसार ऐसा क्यों बनाया है, जहां आदमी कैसे कटता है तो इसके लिए दर्द तक नहीं होता । यहां पाप इतना बढ़ गया है कि गरीब और कमीना आदमी कौढ़ी बनकर अपने पेट के लिए अपनी अच्छी देह को गन्दा बना लेता है । यहां एक आदमी देवता है, पर हम तो कमीन हैं । वे बड़े लोग क्यों करते हैं ऐसा ? क्या वे अपने धन और हुकूमत के लिए आदमी पर अत्याचार करने में नहीं कांपते ? तू चुप है । तू जबाब नहीं देती । नट की छोरी पर जवानी आती है और गन्दे आदमी उसे बेइज्जत करते हैं, फिर भी वह रंडी की तरह जिए जाती है । मर क्यों नहीं जाती ? हम सब मर क्यों नहीं जाते ?" 66

मानव प्रकृति के हिसाब से कोई भी पुरूष नहीं चाहेगा कि उसकी पत्नी किसी दूसरे पुरूष से संबंध रखे । परन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया , दलित जातियों में विवशता के कारण स्त्री-पुरूष दोनों को इस विषय में समझौता करना पड़ता है । फलतः उसके दूरगामी परिणामों के कारण पति पत्नी में शनैः शनैः "शीत-संबंध" स्थापित होने लगते हैं । तथाकथित उच्च-वर्गीय परिवेश में भी ऐसे शीत-संबंध होते हैं परन्तु वहां कारण उनकी विलासिता है यहां कारण विलासिता न होकर गरीबी और मजबूरी होते हैं ।

उक्त पर-पुरूष यौन-संबंध की बात को यदि विस्मृत कर दें, तो

अन्यथा यहां पति-पत्नी का जीवन उनके जीवन-संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में एक साझा जीवन होता है । स्त्री-पुरूष दोनों कमाते हैं । अतः यहां पति-पत्नी पर रूआब नहीं झाड़ सकता ।

अशिक्षा, दरिद्रता, अज्ञान आदि के कारण दलित वर्ग के अधिकांश पुरूष नाना प्रकार के व्यसनों के शिकार हो जाते हैं । दलित जातियों में दारू,शराब, ताड़ी आदि बहुत सामान्य है, बल्कि कई बार इसे न पीने वाले को "नामर्द" करार दिया जाता है । इन आदतों के कारण पति - पत्नी में लड़ाई-झगड़े, मारा-कूटी इत्यादि का होना यहां बिलकुल सामान्य बात है । कई बार तो ऐसा भी देखा गया है कि स्त्री दिन भर मेहनत-मजदूरी करके साम को अपने आदमी के लिए दारू भी ले जाती है । मंजुल भगत के उपन्यास "अनारू" की अनारू एक ऐसी ही औरत है ।

§2§ भाई-बहन सम्बन्ध :--

दलितों का जीवन दुःखमय और संघर्षपूर्ण होने के कारण, भाई-बहन संबंधों में बहुत उष्णता पाई जाती है । यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" कृत पत्थर के के आंसू" का मुख्य पात्र दरशन ढोली जाति का है । उसकी बहन कस्तूरी को ठाकुर जीत सिंह अपनी कामलिप्सा को संतुष्ट करने के लिए अपने महल में उठवा लेता है । कस्तूरी महल से कूदकर आत्महत्या कर लेती है । तब दरशन अपनी बहन का प्रतिशोध लेने के लिए डाकू बन जाता है और समूचे ठाकुर खानदान को समाप्त कर देता है । बहन की चिता को आग देते समय दरशन के मन में जो प्रतिहिंसा के भाव मंडराते हैं उसका वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है —" चिता के समक्ष दरसन बैठा था । उसे महसूस हो रहा था कि ये लपटें धरे-धीरे उसके अपने अन्तर से जल रही हैं । धीरे - धीरे लाश राख में बदल गयी । सभी ने देखा दरसन उस गरम राख को हाथ में लेकर मुट्ठी में भींच रहा है । उसकी आकृति भयानक होकर एक क्रूरता में डूब गयी ।" 67

डॉ० रामदरश मिश्र कृत "जल टूटता हुआ" उपन्यास में हंसिया नामक एक युवक ब्राह्मण कन्या के साथ सहवास करते हुए पकड़ा जाता है । तब गांव वाले उसे पकड़ कर बहुत बुरी तरह से उसकी पिटाई करते हैं । जब हंसिया जूतों, डंडों और लातों की बौछार झेल रहा होता है, तब यह खबर उसकी बहन लवंगी को होती है । लवंगी दौड़कर वहा जाती है और तमाम मान-मर्यादा को दरकिनार करते हुए अपने भाई को बचा लेती है । उन सबको वह बुरी तरह से लताड़ती है । उस समय का लवंगी का पुण्य प्रकोप देखते ही बनता है ।

ऊपर जिन परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है, उनके रहते कहीं-कहीं भाई-बहन संबंधों में भी शीत-संबंध देखने को मिलते हैं । "धरती धन न अपना" के मंगू के सामने उसकी बहन ज्ञानों की जवानी के चर्चे होते हैं और मंगू इसका मूकसाक्षी मात्र बनकर यह सब सुन लेता है । "सूखता हुआ तालाब" की चेनइया का भाई भी अपनी बहन के अवैध यौन संबंधों को स्वीकार कर लेता है । इस प्रकार एक तरफ जहां भाई-बहन संबंधों में अत्यंत प्रगाढ़ता पाई जाती है, वहां दूसरी तरफ उनमें तनाव की स्थिति भी दृष्टिगत होती है ।

§3§ पिता-पुत्र संबंध :---

दलित जातियों में प्रायः बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न तो होता नहीं है, अतः इन उत्तरदायित्वों से पिता मुक्त होता है । पुत्र को बचपन में सात-आठ वर्षों तक थोड़ा लाड़-प्यार मिल जाता है, जिसमें उसका सारा समय खेल-कूद में व्यतीत हो जाता है । ऐसे बच्चों को मां का प्यार ज्यादा मिलता है । बाप की तरफ से तो थोड़ा डर या आतंक का वातावरण ही रहता है । दस-बारह साल के बाद बच्चा मेहनत-मजदूरी पर जाने लगता है । वह जो कुछ भी कमाता है, लाकर अपने मां-बाप को दे देता है । समस्याएं युवावस्था के बाद आती हैं । जब लड़के का ब्याह हो

जाता है । और जब उसकी बहू आती है तो कुछ ही समय में वे अलग हो जाते हैं । लड़का गांव में ही दूसरा झोंपड़ा बना लेता है या फिर किसी दूसरे गांव में चला जाता है । इस प्रकार दलित जातियों में संयुक्त परिवार की प्रथा बहुत कम दृष्टिगोचर होती है । उनके इस चिंतन को हम "पक्षी - चिंतन" कह सकते हैं । पक्षियों में माता-पिता , शिशु पक्षियों की चिंता तब तक करते हैं जब तक वे उड़ने में समर्थ नहीं होते । यहां भी युवावस्था के बाद बच्चे मा-बाप से अलग हो जाते हैं ।

इधर आजादी के बाद एक परिवर्तन भी आया है । दलित लड़के शहरों में जाकर नौकरियां करने लगे हैं । वे शहर से कुछ कमाकर अपने मां-बाप को आर्थिक सहायता करते हैं । "जल टूटता हुआ" में जसपतिया चमार का बेटा रमपतिया शहर जाकर नौकरी करने लगा है । इस प्रकार दो पैसे की कमाही हो जाने से इन लोगों का आत्मविश्वास भी कुछ बढ़ा है । जसपतिया चमार अब ठाकुर महीप सिंह को यह कहने का साहस जुटा पाया है कि "बबुआ, गाली मत दीजिए । रमपतिया नौकरी पर गया है, तो क्या हो गया ? नौकरी नहीं करेंगे तो हम लोग खाएंगे क्या ?" 68

शैलेश मटियानी कृत "नागवल्लरी" उपन्यास में नारायण एक स्वाभमानी और आदर्शवादी युवक है । उसके पिता डिगरराम की मौत छाना गांव के जमना दत्त पुरोहित की मरी हुई गाय खींचने में हो जाती है । उन दिनों में गांव के सभी चमार, डोम जाति के लोगों ने इस काम का बहिष्कार कर रखा था । जब कोई नहीं जाता तब डिगरराम चोरी-छिपे अकेले जाते हैं, और रीढ़ में चसक पड़ जाने से वे वहीं पर ढेर हो जाते हैं । कुछ डोम नेता नारायण को पुलिस केस के लिए उकसाते हैं , परन्तु कृष्णा मास्टर के कहने से वह इसके लिए तैयार नहीं होता । जमनादत्त जी जब बहुत आग्रह करके उसे पांच सौ रूपये देते हैं, तब वह उन सारे रूपयों को स्कूल के फंड में दान कर देता है । जिसके यहां खाने के लाले हों और जो स्वयं मजदूरी करके अपना पेट पालता हो, उसका ऐसा व्यवहार श्लाघनीय

ही कहा जाएगा ।

"अलग अलग वैतरणी" में जैपाल सिंह का बेटा बुझारत सिंह छोटी सी गलती पर पांव में लाठी मार कर दुक्खन की टांग तोड़ देता है, तब उसका पिता सभी चमारों को इकट्ठा करके जैपालसिंह की हवेली पर जाते हैं । इस प्रकार यह भी देखा गया है कि अलग अलग रहते हुए भी जब बाप-बेटे में से किसी पर संकट गहराता है , तब वे एक-दूसरे के लिए मरने-मारने के लिए भी तैयार हो जाते हैं । इस प्रकार यहां भी पिता-पुत्र के संबंधों में खून का तकाजा भी होता है और कहीं-कही पर तनावपूर्ण स्थितियां भी पाई जाती हैं ।

§4§ पिता-पुत्री संबंध :---

पिता-पुत्र संबंधों की भांति यहां भी पुत्री का शैशवकाल तो खेल-कूद में व्यतीत हो जाता है । कुछ शयानी होने पर वह भी मां-बाप के काम में हाथ बटाती है । वह भी मेहनत-मजदूरी करने लगती है । युवा होने पर जब तक उसका गौना नहीं हो जाता, वह मां-बाप के यहां रहकर काम करती है । प्रायः देखा गया है कि दलित जातियों में यौन-शुचिता का प्रश्न उतना अहमियत नहीं रखता । यहां अनेक बार निर्दिष्ट किया जा चुका है कि गांव के जमींदार और बड़े लोग दलित जातियों की बहू-बेटियों पर आपने हाथ साफ करते रहते हैं, अतः ऐसे संबंधों में बाप प्रायः देखा अन-देखा कर जाते हैं । "जल टूटता हुआ", "अलग अलग वैतरणी", "धरती धन न अपना", आदि सभी उपन्यासों में हम इस स्थिति को देख सकते हैं । " "सूखता हुआ तालाब" तथा "मैला आंचल" में इस स्थिति का एक दूसरा आयाम भी मिलता है । जवान बेटी उनके लिए दुधारू गाय का काम देती है और इसलिए वे §मां-बाप§ उसे ससुराल भेजने में कतराते हैं । अतः यहां भी कहीं-कहीं पिता-पुत्री संबंध में एक प्रकार का ठंडापन पाया जाता है ।

§5§ पुत्री-माता संबंध :---

दलित जातियों में पिता-पुत्री संबंध की तुलना में माता-पुत्री संबंध अधिक उष्णतापूर्ण होते हैं । पुत्र की अपेक्षा यहां मां का ध्यान पुत्री की ओर अधिक रहता है । काली मजदूरी करके माताएं एक-एक पैसा अपनी बेटी के ब्याह के लिए जोड़ती हैं । मांए नहीं चाहती कि उनकी बेटियों यौन-संबंध अविवाहित अवस्था में ही गांव के ऊंची जाति के लोगों से हो, परन्तु लाचारी और मजबूरी के कारण कभी ऐसा होता है तो अपनी छाती पर पत्थर रखकर उसे नजरन्दाज करना पड़ता है । पैसे के कुछ ऐसे उदाहरण भी प्राप्त होते हैं , जिनमें माताएं अपनी बेटी की यौन-कमाई पर गुलछर्रे उड़ाती हैं । "मैला आंचल" तथा "सूखता हुआ तालाब में ऐसी माताओं के कई उदाहरण मिलते हैं ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि इनकी पारिवारिक समस्याओं पर सामाजिक समस्याओं और आर्थिक समस्याओं की प्रतिछाया मंडराती रहती है । पारिवारिक समस्याएं सामाजिक समस्याओं के ही परिणामस्वरूप आई हैं । पारिवारिक संबंधों में जो कुछ भी ऊष्णता या तनाव दृष्टिगोचर होते हैं, उसके मूल कहीं और हैं ।

§3§ आर्थिक समस्याएं :---

यह तो एक सर्वसामान्य हकीकत है कि किसी भी वर्ग या जाति की गतिविधियां अर्थ-सत्ता के द्वारा ही निश्चित एवं नियंत्रित होती रहती हैं । "सर्वेगुणाह कान्चनम् आश्रयन्ते " या "समरथ को नहिं दोष गुसाई" जो कहा गया है , उसके पीछे अनुभव का निचोड़ है । प्रायः कहा जाता है कि औरत की ताकत उसके आदमी में होती है और आदमी की ताकत उसकी दौलत में होती है । जब तक पति जीवित रहता है, स्त्री कैसे भी संकट का सामना कर लेगी । वह अडिग रहेगी, टूटेगी नहीं । वह टूट तब जाती है जब उसका पति नहीं रहता । ठीक उसी प्रकार पुरूष सभी

मुश्किलतों का सामना कर लेता है जब तक उसके पास पैसे-टके होते हैं । पैसे-टके से खाली होने पर आदमी जीते-जी मुर्दा हो जाता है । उसकी चेतना कुंद हो जाती है । उसकी शक्ति विस्मृत हो जाती है ।

पिछड़ी जातियों में जो दयनीयता, लाचारी , निष्प्राणता दिखाई पड़ती है, उसका कारण उनकी दरिद्र अवस्था है । और इस दरिद्र अवस्था के पीछे हजारों वर्षों का इतिहास पड़ा हुआ है । आज का युग एक दृष्टि से, विशेषतः दलित जातियों के लिए तो, बहुत अच्छा समझा जाएगा क्योंकि कम से कम अब वैधानिक दृष्टि से उन पर किसी प्रकार की आर्थिक निर्योग्यताएं §Economic Disabilities§ नहीं हैं । यदि पैसे हों तो वे सोना-चांदी भी खरीद सकते हैं, जमीन-जायदाद भी खरीद सकते हैं, बैंक में पैसे भी रख सकते हैं, उद्योग-व्यवसाय के लिए बैंक से कर्जा ले सकते हैं । इस प्रकार महाजनों के शोष से बच सकते हैं । ब्रिटिश काल के पूर्व इस वर्ग पर अनेक प्रकार की आर्थिक निर्योग्यताएं §Economic Disabilities — § थोपी गई थी । वे अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर दूसरा कोई काम कर नहीं सकते थे । सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी थी कि उनके पास कभी दो पैसे संग्रहीत नहीं हो सकते हैं । जगदीश चंद्र ने "धरती धन न अपना" उपन्यास के लेखकीय वक्तव्य में कहा है —" मैं यह सब देखकर बहुत ही उद्विग्न होता था कि आर्थिक अभावों की चक्की में युग-युगान्तरों से पिस रहे हरिजन अब भी मध्य कालीन यातनाओं को भोग रहे हैं । जिस भूमि पर वे रहते हैं, जिस जमीन को वे जोतते हैं, यहां तक कि जिन छप्परों में वे रहते हैं, कुछ भी उनका नहीं है ।" 69

"धरती धन न अपना" के लेखक जगदीश चन्द्र अर्थशास्त्र के छात्र भी चुके हैं अतः पंजाब के घोड़ेवान गांव के हरिजन चमारों की आर्थिक दुरावस्था का सम्यक चित्रण करने में वे सफल हुए हैं । लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में निर्देशित किया है कि दलित लोगों पर जो अत्याचार और अन्याय होता है, उसके मूल में भी उनकी भयंकर गरीबी है । वे पूर्णतया उन पर निर्भर होते

हैं । छाछ, दूध, लस्सी जैसी चीज-वस्तुओं के लिए वे तरसते रहते हैं । आर्थिक सद्धरता या संपन्नता से दलितों की सामाजिक स्थिति में क्या और कितना परिवर्तन आता है, वह भी इसी उपन्यास में अभिव्यंजित हुआ है । उपन्यास का नायक काली बचपन से ही शहर में भाग गया था । वहां कुछ पढ़-लिखकर नौकरी भी करने लगा था । बरसों बाद एक अच्छी खासी रकम लेकर वह गांव लौटता है । काली के लौटने पर प्रतापी चाची बहुत प्रसन्न हो जाती हैं । काली के माता-पिता काल कवलित हो गये थे । प्रतापी चाची ने ही उसे पाल-पोषकर बड़ा किया था । काली जो पैसे कमाकर लाया है, उसमें से दस का एक नोट लेकर प्रतापी चाची छज्जू शाह के यहां शक्कर लेने जाती है । गांव के दूसरे चमार तो गुड की चाय पीते हैं । पर काली बड़ा आदमी है, वह भला गुड की चाय कैसे पी सकता है । चाची प्रतापी के पास दस का नोट देखकर छज्जू शाह भी विस्फारित नेत्रों से उनको देखने लगता है । (उपन्यास की कथावस्तु आज से करीबन सत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व की है,, अतः उस समय दस रूपये की नोट बहुत अहमियत रखती थी । तब बहुत से ऐसे ग्रामीण भी थे जिन्होंने जिन्दगी में कभी सौ की नोट के दर्शन नहीं किये थे ।) इसी दस के नोट के कारण छज्जू शाह काली को "बाबू कालीदास" कहता है । चमादड़ी के दूसरे चमार युवक भी काली को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और उसकी पड़ी बात झीलने के लिए तैयार रहते हैं । हरनाम सिंह जो दूसरे चमारों के साथ बिना गाली के बात नहीं करता, वह भी काली के साथ ऐसी-वैसी बात करने का साहस नहीं कर पाता है । यह तो केवल एक पुश्त या पीढ़ी की बात है, जब एक पुश्त की सम्पन्नता मनुष्य में इतना आत्मविश्वास भर सकती है, तो हजारों वर्ष की सम्पन्नता और विपन्नता क्या कर सकती है इसका अन्दाजा हम लगा सकते हैं । अभी कुछ वर्ष पूर्व बड़ौदा के श्री भीखा भाई रबारी गुजरात राज्य में उपमंत्री पद पर आसीन हुए थे तब गुजरात भर के रबारी, भरवाड़, अहीर आदि जाति के लोग फूले नहीं समाते थे । उनका आत्मविश्वास और साहस बढ़ गया था । घोडेवाहा गांव के चमार जहां किसी चौधरी के आगे

मुंह तक नहीं खोलते थे , सारे अन्याय और अत्याचारक्षुक चुपचाप बर्दास्त कर लेते थे । वे ही चमार बाद में काली के नेतृत्व में गांव के जमींदारों के खिलाफ सत्याग्रह करने के लिए तैयार हो जाते हैं । यह शक्ति और साहस कहां से आया ?

"जल टूटता हुआ" का जगपतिया ठाकुर महीप सिंह को जबाब देने की हिम्मत करता है, उसके पीछे भी उसके परिवार में आई हुई आर्थिक निर्भरता कारणभूत है । उसका बेटा रमपतिया अब शहर में जाकर नौकरी करता है और घर पर पैसे भेजता है । जगपतिया का परिवार अब ठाकुर महीप सिंह की सहायता का मोहताज नहीं है । इसीलिए उसमें यह हिम्मत आई है ।

शैलेश मटियानी के उपन्यास "नागवल्लीरी " में पिछडी जाति में आए इस आर्थिक बदलाव को लेखक ने भली भांति रेखांकित किया है । पिछड़ी जाति के कई युवक पढ़-लिखकर आरक्षित कोटे में सरकार में ऊंचे-ऊंचे पदों पर बैठ गये हैं । इससे उनके पूरे समाज पर भले कोई बदलाव न आया हो, परन्तु उनका व्यक्तिगत जीवन स्तर तो ऊपर उठा ही है । अब इस वर्ग से लोग डी.डी.ओ., टी.डी.ओ, शिक्षक, कलेक्टर, कमिश्नर, डी.एम, आदि भी बनते हैं । फलतः उनका आर्थिक स्तर ऊपर उठता है । उसका प्रभाव उनके पूरे समाज पर भी पड़ता है । इसी उपन्यास के नारायण नामक युवक की आंखों में हमें एक विशिष्ट चमक दिखती है, उसके कारणों की यदि पड़ताल करें तो यही बात सामने आ सकती है । इसी उपन्यास में भोगांव गांव के कृष्णा मास्टर का किस्सा भी वर्णित है । कृष्णा मास्टर प्रयाग विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि लेकर भोगांव के हाईस्कूल में अध्यापक के रूप में कार्य कर रहे हैं । उनका अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, इतिहास, पुराण और शास्त्र पर जबर्दस्त प्रभुत्व है । फलतः प्रदेश का विधायक कल्याण ~~का~~ ठाकुर भी कृष्णा मास्टर से बात करने में झिझक का अनुभव करता है । कृष्णा मास्टर गायत्री देवी नामक एक ठकुरानी से विवाह करते हैं । क्या यह

पहले कभी संभव था ?

यद्यपि ठकुराइन गायत्री देवी एक विधवा स्त्री हैं, तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि यह करिश्मा इसलिए संभव हुआ है कि कृष्णा मास्-टर सुशिक्षित और आर्थिक दृष्टि से संपन्न स्थिति में हैं ।

"जल टूटता हुआ" उपन्यास में उपन्यास के नायक सतीश का जो स्वगत कथन है, उसमें भी यही स्वर सुनाई पड़ता है --" गांव टूट रहा है, मूल्य टूट रहे हैं, सत्य टूट रहा है, कोई किसी का नहीं, सब अकेले हैं, एक दूसरे के तमाशाई, वही क्यों सबका ठेका लिए फिरे.... गांव टूट रहा है । मगर नहीं एक नया गांव बन भी रहा है, वह है किसानों-मजदूरों का । जगपतिया का खेत नहीं कटवा सके , महीप सिंह । वह अकेला नहीं था, उसके साथ अनेक हाथ उठ गये थे, मरने-मारने को तैयार ।" 70

उपर्युक्त उद्धरण में "मगर" के बाद का जो कथन है वह नये परिवर्तनों को रेखांकित करता है । गांव में जब दुश्मनी होती है तो बड़े लोग कईबार अपने दुश्मनों के खेत कटवा लेते हैं, और इस प्रकार फसल को बरबाद कर देते हैं । परन्तु उपर्युक्त कथन में कहा गया है कि ठाकुर महीप सिंह जगपतिया का खेत नहीं कटवा सके । इसका कारण मुख्यतया आर्थिक है । क्योंकि जगपतिया पहले वाला जगपतिया नहीं है, उसका बेटा शहर में नौकरी करता है, दूसरे दस लोगों को वह शहर में नौकरी लगा सकता है । अतः गांव तथा जाति-बिरादरी में उसका वसिला बढ़ गया है । आर्थिक दृष्टि से ऊपर आने पर अब जगपतिया के साथ अनेक लोग हो गये हैं ।

इस परिवर्तन को डॉ० राही मासूम रज़ा के उपन्यास "आधा गांव" में भी देखा जा सकता है । जमींदारी प्रथा के टूटने पर और पिछड़ी जाति के आर्थिक उत्कर्ष से जो नये समीकरण बने हैं, उसे डॉ० पारूकान्त देसाई जी ने निम्नलिखित शब्दों में रेखांकित किया है —" कुल्लू मियां ने जूते की दुकान खोल दी । शुरू में उन्हें इस व्यवसाय में शर्म आती थी और

कभी–कभी झल्ला भी जाते थे क्योंकि जिनकी पुश्तें उन्हें और उनके बुजुर्गों को सलाम करने में गुजरी थी, वे जुलाहे और राकी, चमार और अहीर अब उनके ग्राहक थे, लेकिन फिर रक्ता–रक्ता खरीद के दाम पर कसमें खा – खाकर माल बेचने का फन उन्हें आ गया । हम्माद मियां और जवाद मियां के बाद अब फुस्सू मिंया की भी कुछ हैसियत बन गई कि लोग आकर उनके दरवाजे पर बैठने लगे । दागी हड्डी वाले जवादमियां के बेटे कम्मो उर्फ डॉक्टर कमाल दीन की मातहत में अब दो सय्यद जादे नौकरी करते थे जिनको बात–बेबात पर डांट खानी पड़ती थी । रहमत जुलाहा अब अब्बू मिंया से बराबरी का व्यवहार कर सकता है । जवादमिंया अब हुसैन अली मिंया जैसे पक्की हड्डी वाले सैयद घराने में रिश्ता भेजने का साहस कर सकते हैं ।" 71

इसी उपन्यास में लेखक ने यह भी रेखांकित किया है कि परंपरा–वादी सत्ता के स्थान अब किस तरफ खिसक रहे हैं । दुखराम चमार का बेटा परशुराम अब एम.एल.ए. हो गया है । एम.एल.ए. हो जाने के कारण अब उसकी हैसियत बढ़ गयी है । उसके अपने मकान को पक्का करवा लिया है । और उसके दरवाजे के सामने सरकारी जीप खड़ी रहती है । गंगौली गांव के सैयद जो कभी इन लोगों से जूतों से बात करते थे, अब उन सैयदों के बेटे परसुराम के दरवाजे पर जाकर बैठते हैं । रमजान जुलाहा भी अब अपने मकान के सामने पाखाना बनवाता है । यहां किसी के मन में प्रश्न हो सकता है कि रमजान जुलाहा ने पाखाना बनवाया, उसमें कौन–सी बड़ी बात है ? कोई भी व्यक्ति जिसके पास पैसे हो , पक्का पाखाना बनवा सकता है । परन्तु यह बात जितनी दिखती है, उतनी सरल नहीं है । पहले छोटी जाति के लोग, स्थिति होने पर भी पाखाना नहीं बनवा सकते थे । एक और परिवर्तन भी यहां लक्षित किया जा सकता है — पहले सययद जादे निम्न जाति की बहुओं और बेटियों की इज्जत सरेआम लूटते थे । अब समीकरण बदल गया है । अब रहमत जुलाहा का लड़का बरकत अलीगढ़ मुस्लिम युनि –

वर्सिटी में पढ़ता है और हुसैन अली मिंया, जो पक्की हड्डी के ऊंचे खान-दानी सययद मुसलमान हैं, कामिला से इश्क फरमा रहा है । हुसैन अली मिंया बिलकुल ठीक कहते हैं ---" जौन खूटै पर अकड़ते रहे तौन खूंटवे कट गया ।" 72

शैलेष मटियानी कृत "चंद औरतों का शहर" में भी यह दृष्टि - गोचर होता है कि आर्थिक स्थिति सुधरने के साथ व्यक्ति का सामाजिक स्टेटस भी ऊपर आता है । प्रस्तुत उपन्यास के भगतराम डोम जाति के हैं । परन्तु सिमला में उनका दबदबा एक दलित नेता के रूप में है । वर्षों से वे इस क्षेत्र से चुनाव जीतते आए हैं, और मिनिस्टर तक रह चुके हैं । उनकी लड़की चारूलता जो मिसेज बलवीर के नाम से प्रसिद्ध है, छलकते हुए स्त्रीत्व, आत्माभिमान, बौद्धिकता, प्रत्युत्पन्नमति जैसे गुणों के कारण आकर्षक व्यक्तित्व की स्वामिनी है । यह आर्थिक उन्नति के कारण हो पाया है ।

डॉ0 आरिग पुडि के उपन्यास "अभिशाप" में उसका नायक पद्म-नाभन आई.ए.एस. ऑफीसर हो जाता है और फलतः वे ऊंची सोसायटी की क्लब के मेम्बर हो जाते हैं । वे क्लब का बेज भी लगाते हैं । क्लब के मेम्बर होने के कारण उसकी हैसियत और भी बढ़ जाती है । पद्मनाभन स्नेहा नामक ब्राह्मण कन्या से शादी करते हैं ।

इसी उपन्यास में दलित-सवर्ण संघर्ष की बात भी आई है —"एक दिन तो अछूतों ने हद कर दी बालकृष्ण रेड्डियार के खेतों में काम करने वाले अछूत उनके घर में घुस आये और उनकी अनुपस्थिति में उनकी पत्नी व लड़की से अपने नौकरों की तरह काम लेकर उन्हें हर तरह से अपमानित किया ।

रेड्डियार के समय पर आने के कारण वे भयंकर विभीषिका से मुक्ति पा सकी । यह वस्तुतः उस आचरण की प्रतिक्रिया थी जो सदियों से सवर्ण लोग अछूतों के साथ करते आ रहे थे ।" 73

यहां फ्रैन्च विचारक पियरे की वह बात ध्यानार्ह रहे कि पिछड़े तबके के लोग, यदि अग्रिम पंक्ति में आने के बाद, उसी प्रकार की सामन्त -

कालीन मनोवृत्ति से घिरे रहे और ठीक वैसा ही व्यवहार करे तो संसार में अन्याय और अत्याचार का दुश्चक्र कभी समाप्त नहीं होता । पिछड़ों पर अत्याचार हो या अगड़ों पर अत्याचार हों, अत्याचार तो अत्याचार ही है । उसे मानवता पर किया गया अत्याचार ही समझना चाहिए ।

उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा हम केवल इस तथ्य को व्याख्यायित करना चाहते हैं कि दलितों की दयनीय और निम्न स्थिति के लिए उनका आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा होना एक मुख्य कारण है और जहां-जहां उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है, वहां-वहां उसके गुणात्मक परिणाम दृष्टि-गोचर हुए हैं । इसका अर्थ यह कतई नहीं कि पिछड़ी जातियों के सभी लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो गये हैं । ये तो कुछ छिट-पुट उदाहरण है । पिछड़ी जाति का बृहद समाज तो आज भी आर्थिक दृष्टि से असंपन्न है ।

भारतीय सामाजिक परिदृश्य में पिछड़ों के साथ बेगार की समस्या लगी रहती है । बेगार की समस्या आर्थिक समस्या है । अपने वैयक्तिक तथा सार्वजनिक कामों में गांव के बड़े लोग, चौधरी , जमींदार , महाजन आदि पिछड़ी जाति के लोगों से बेगार करवाते हैं । कई-कई दिनों तक ~~बिन~~ बिना मजदूरी के मेहनत करनी पड़ती है । यदि कोई बेगार की मना करता है, तो मार-मार कर उसकी खाल उधेड़ दी जाती है । दलित वर्ग इस बेगार के लिए मजबूर है क्योंकि गरीब होने के कारण वे इस अन्याय का विरोध नहीं कर सकते । पूर्ववर्ती पृष्ठों में "धरती धन न अपना" उपन्यास के संदर्भ में हम इस तथ्य को रेखांकित कर चुके हैं । प्रस्तुत उपन्यास में काली के नेतृत्व में जो विद्रोह या सत्याग्रह होता है, वह सफल होता यदि घोड़े-वाहा गांव के चमारों की आर्थिक स्थिति कुछ ठीक होती । परन्तु ये लोग आर्थिक दृष्ट्या पूरी तरह से उन पर निर्भर थे , अतः दो-तीन दिन में ही उनके हौंसले पस्त हो जाते हैं ।

"बेगार की भांति बंधुआ मजदूर या बंधुआ चाकर की समस्या भी आर्थिक पक्ष से जुड़ी हुई है । पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह निरूपित किया गया है

कि सामाजिक , आर्थिक निर्योग्यताओं के कारण दलित वर्ग को हमेशा इसी स्थिति में रखा गया कि उसके पास कभी दो पैसे संग्रहीत न हो सके । अतः अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति तो वे किसी तरह कर लेते हैं । जूठन खाकर या आधी रोटी खाकर तथा उतरण पहन कर अपना निर्वाह कर लेते हैं, परन्तु जब कोई सामाजिक या व्यवहारिक खर्च आता है, तब उनको जमींदारों या महाजनों के पास जाना पड़ता है । उनसे कर्ज या उधार लेना पड़ता है । इस कर्ज या उधार के लिए उनको उनके यहां बंधुआ नौकर या बंधुआ मजदूर के रूप में दिन-रात खटना पड़ता है । सूद-दर-सूद का गोरख-धंधा चलता है । मूल रकम तो जहां की तहां रहती है और बंधुआ मजदूर या नौकर को सालों साल उसमें लग जाते हैं । कई बार तो बाप का कर्ज उतारने के लिए बेटे को भी बंधुआ मजदूर बनना पड़ता है । आलोच्य उपन्यासों में बंधुआ मजदूर के कई उदाहरण मिलते हैं । "अलग अलग वैतरणी" का दुक्खन, "जल टूटता हुआ" का हंसिया और जगपतिया, "धरती धन न अपना" का मंगू और जितू आदि इसके उदाहरण हैं । इस [illegible] अन्याय प्रथा के पीछे उनकी आर्थिक दुरावस्था ही जिम्मेदार हैं । इसकी प्रतीति हमें "जल टूटता हुआ" के जगपतिया के उदाहरण से भलीभांति हो जाती है । जगपतिया का बेटा रमपतिया जब शहर में नौकरी करने लगता है , तो उनकेके पास दो पैसे आते हैं और तब जगपतिया महीपसिंह को जबाब देने की स्थिति में आ जाता है ।

ब्रज भूषण द्वारा प्रणीत "मंगलोदय" उपन्यास में मंगला एक अछूत कन्या है । मंगला के पिता ने कभी 200 /- रूपये बंशी महराज से लिये थे , इन 200 /- रूपयों के सूद के बदले में मंगला और उसके पिता दस बरस तक बंशीलाल के खेतों में मजूरी करते हैं । [74] फिर भी मुद्दल तो बाकी ही रहता है ।

दलित वर्ग के आर्थिक पिछड़ेपन के लिए उनका अज्ञान भी जिम्मेदार होता है । "गोदान" उपन्यास में हम देखते हैं कि पारस्परिक द्वेष के कारण

होरी का भाई गाय को जहर खिला देता है, और गाय मर जाती है । गाय होरी की मरी है, हानि होरी की हुई है परन्तु अज्ञान और भीरूता के कारण वह ऐसा व्यवहार करता है कि जैसे उसके द्वारा कोई जघन्य अपराध हो गया हो । यहां ऐसी घटना यदि किसी ऊंची जाति वाले के यहां घटित होती तो उसे दबा दिया जाता । परन्तु पटवारी, महाजन, पुलिस आदि सभी होरी पर हावी हो जाते हैं और भाई को छुड़ाने के लिए होरी को महाजन से कर्ज लेना पड़ता है । गाय की गाय भी गई और ऊपर से महाजन के कर्जदार भी बने । यहां एक बात और सामने आती हैं कि इनकी गरीबी के पीछे उनका पारस्परिक राग-द्वेष और वैर-वृत्ति की भावना भी है । ये लोग दूसरों के तो अन्याय और अत्याचार सहन कर लेते हैं, पर किसी अपने की छोटी-सी बात भी बर्दाश्त नहीं कर सकते और उसके लिए मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं । ऊंचे और बड़े लोगों की संपन्नता से उन्हें जलन नहीं होती । बल्कि कई बार तो वे उनकी समृद्धि के गुणगान करने में से ऊंचे नहीं आते । परन्तु जहां उनका अपना कोई दो कदम भी आगे निकल जाए तो वे लोग उसकी उन्नति या तरक्की से जल-भुन जाते हैं । "गोदान" के होरी वाले किस्से में भी यही होता है । होरी महतो के यहां गाय आती है, वह उसके सगे भाई से ही नहीं देखा जाता । अतः पारस्परिक असंगठितता के कारण वे आर्थिक दृष्टि से हमेशा पिछड़े ही बने रहते हैं, कभी उबर नहीं सकते ।

अज्ञान की भांति "मरजादा" विषयक उनका झूठा खयाल भी उनकी आर्थिक अवनति का एक कारण है । "गोदान" उपन्यास में इसी मरजादा की रक्षा के लिए होरी "डांड" भरने के लिए तैयार हो जाता है और उसके कारण फिर उसे महाजन का कर्जदार होना पड़ता है । इसी मान-मर्यादा के विचारों के कारण कई बार ये लोग अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च कर देते हैं और फिर उसे चुकाने के लिए उनकी अनेक पीढ़ियों को संघर्ष करना पड़ता है ।

आलोच्य उपन्यासों के अध्ययन से एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि लघुताग्रंथि के कारण दलित वर्ग का जो व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से थोड़ा ऊपर उठता है, वह झूंठी शानो-शौकत के खयाल में डूब कर धन का दुर्व्यय करता है और अपनी उठी हुई आर्थिक स्थिति का यथेष्ट लाभ नहीं उठा पाता । "धरती धन न अपना" का काली उसका उदाहरण है । काली शहर में जाकर नौकरी करता है और कुछ रूपये कमाता है । अब यदि काली के स्थान पर कोई अगड़ी जाति का युवक होता तो वह जमी-जमायी नौकरी न छोड़ देता । कुछ दिन अपने गांव रहकर वापिस नौकरी पर चला जाता, या फिर जो पैसे कमाये हैं उन्हीं पैसों से कोई नया व्यवसाय शुरू करता । परन्तु काली पक्का मकान बनवाने के चक्कर में फिर से खेतिहर मजदूर वाली स्थिति में आ जाता है ।

दलित वर्ग की पिछड़ी अवस्था के कारणों में उनमें परस्पर कुसंप और वैरवृत्ति भी उत्तरदायी है । काली के यहां चोरी होती है, उसमें उसकी ही जाति के लोग सामिल होते हैं । "अभिशाप" उपन्यास के पद्मनाभन पर जो भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जाता है, उसमें भी दलित वर्ग के ही कुछ लोगों को हाथा बनाया जाता है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि दलित समुदायों के साथ जो अत्याचार और अन्याय होते हैं, उसके पीछे उनकी आर्थिक स्थितियां उत्तरदायी हैं । आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण उनकी सकारात्मक शक्तियां पल्लवित एवं पुष्पित नहीं होती । उनके सपने सपने ही रह जाते हैं । उनकी सप्राणता शनैः शनैः खतम हो जाती है । यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि यदि आदमी के पैसा होता है, तो उसमें हिम्मत अपने आप खुल जाती है । व्यक्ति यदि आर्थिक दृष्टिया सम्पन्न हो तो समस्या का कोई न कोई हल निकल ही आता है ।

निष्कर्ष :—

प्रस्तुत अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक सहजतया पहुंच सकते हैं ।

§1§ मानव जीवन की समस्याएं परस्पर अनुस्यूत होती हैं । एक प्रकार की समस्या का उत्स किसी दूसरे प्रकार की समस्या में उपलब्ध होता है ।

§2§ निम्न जातियों में भी जातिगत संस्तरण § § पाया जाता है, जिसके कारण अनेक समस्याएं उद्भवित होती हैं ।

§3§ दलित वर्ग से संलग्नित सामाजिक समस्याओं में अस्पृश्यता की समस्या, दलितों के अपमान की समस्या, दलितों पर होने वाले अत्याचार और अन्याय की समस्या, दलित स्त्रियों की यौन - शोषण की समस्या, वैवाहिक समस्याएं, सवर्ण दलित मानसिकता की समस्या प्रभृति मुख्य हैं ।

§4§ जब कोई दलित वर्ग की स्त्री उंची जाति के पुरूष के साथ वैवाहिक सूत्र में बंधती है तब उसके पति को अनेक प्रकार की यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता है ।

§5§ जब कोई उंचे वर्ग की स्त्री किसी दलित व्यक्ति से वैवाहिक सूत्रों में बंधती है, तब उसके सामने अनेक संस्कारगत समस्याएं उपस्थित होती हैं ।

§6§ दलितों की समाज में निम्न स्थिति के कारण उनके पारिवारिक जीवन में भी अनेकानेक समस्याएं पैदा होती हैं ।

§7§ दलितों की दीन-हीन विवश स्थिति के लिए उनकी आर्थिक अवदशा कारणभूत है ।

§8§ दलित वर्ग के लोग जहां भी आर्थिक द्रष्टया ऊपर उठे हैं, वहां उनकी सामाजिक स्थिति में भी थोड़ा-बहुत बदलाव पाया जाता है ।

§9§ दलितों की निम्न आर्थिक स्थिति के लिए अज्ञान, अशिक्षा, असंगठितता, मर्यादा विषयक झूठे खयाल आदि भी उत्तरदायी हैं ।

सन्दर्भ-सूची :—

1- हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर : डॉ० के. एम. पणिक्कर : पृ. 269
2- कर्मभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 90-91
3- ——— वही ——— पृ. 206
4- ——— वही ——— पृ. 206
5- ——— वही ——— पृ. 208
6- ——— वही ——— पृ. 206
7- ——— वही ——— पृ. 207
8- गोदान - प्रेमचन्द - पृ. 208
9- शेखर एक जीवनी : भाग-1, :अज्ञेय : पृ. 208
10- नदी का शोर : डॉ० आरिग पुणि : पृ. 247
11- धरती धन न अपना : जगदीश चन्द्र : पृ. 57
12- ——— वही ——— पृ. 109
13- ——— वही ——— पृ. 167
14- गबन - प्रेमचन्द —— पृ. 302
15- भारतीय कहावत कोश : सं. विश्वनाथ दिनकर नरवडे : पृ. 648
16- ——— वही ——— पृ. 673
17- ——— वही ——— पृ. 676
18- ——— वही ——— पृ. 206
19- धरती धन न अपना : जगदीश चन्द : 229

20- मानपुरा : तहसील डभोई : जिला-छ बड़ौदा, गुजरात
21- संदेश : गुजराती दैनिक पत्र : 10 मार्च - 2000
22- जल टूटता हुआ : डॉ0 रामदरश मिश्र : पृ. 353-354
23- धरती धन न अपना : जगदीश चन्द : पृ. 35
24- द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ0 पारूकान्त देसाई : पृ. 98-99
25- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द : पृ. 189
26- महाभोज : मन्नू भण्डारी : पृ. 135
27- --- वही --- पृ. 131
28- द्रष्टव्य : हजार घोड़ों का सवार : यादवेन्द्र शर्मा : पृ. क्रमशः-17-22
29- ---- वही --- पृ. 38-39
30- अलग अलग वैतरणी : डॉ0 शिव प्रसाद सिंह : पृ. 231
31- ---- वही --- पृ. 231
32- ---- वही --- पृ. 231
33- ---- वही --- पृ. 595
34- यथा प्रस्तावित : गिरिराज किशोर : पृ. 14
35- दैनिक : गुजरात समाचार : दि. 2-2-1999, पृ. 6
36- कब तक पुकारूं ? : रांगेय राघव : पृ. 45
37- अलग अलग वैतरणी : डॉ0 शिवप्रसाद सिंह : 584
38- सूखता हुआ तालाब : डॉ0 रामदरश मिश्र : पृ. 117
39- धरती धन न अपना : जगदीश चन्द : 157
40- ----- वही ---- पृ. 157
41- मकान दर मकान : बाला दूबे : पृ. 122-123
42- गोदान - प्रेमचन्द : पृ. 209
43- एक टुकड़ा इतिहास : गोपाल उपाध्याय : पृ. 13
44- ---- वही ---- पृ. 11-12

45- एक टुकड़ा इतिहास : गोपाल उपाध्याय : पृ. 16
46- ---- वही --- पृ. 247
47- ---- वही --- पृ. 275
48- ---- वही --- पृ. 278
49- ---- वही --- पृ. 279
50- ---- वही --- पृ. 279
51- रामकली : शैलेष मटियानी : पृ. 83
52÷ कब तक पुकारूं ? : रांगेय राघव : पृ. 22
53- ------ वही --- पृ. 23
54- ------ वही --- पृ. 51
55- नाच्यौं बहुत गुपाल : अमृत लाल नागर : पृ. 97
56- ---- वही --- पृ. 98
57- ---- वही --- पृ. 98
58- ---- वही --- पृ. 99
59- नागवल्लरी : शैलेष मटियानी : पृ. 182
60- द्रष्टव्य : अभिशाप : डॉ० आरिग पुडि : पृ. 5
61- ------- वही --- पृ. 22
62- कब तक पुकारूं ? : रांगेय राघव : पृ. 20
63- ------- वही --- पृ. 20
64- ------- वही --- पृ. 45
65- ------- वही --- पृ. 48
66- ------- वही --- पृ. 378
67- प--- पत्थर के आंसू : यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" : पृ. 24
68- जल टूटता हुआ : डॉ० रामदरश मिश्र : पृ. 43
69- धरती धन न अपना : जगदीश चन्द : पृ. 8

70- जल टूटता हुआ : डॉ० रामदरश मिश्र : पृ. 389

71- साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ० पारुकान्त देसाई - पृ. 89

72- आधा गांव : डॉ० राही मासूम रज़ा : पृ. 352

73- अभिशाप : डॉ० आरिग पुडि : पृ. 165

74- मंगलोदय : ब्रजभूषण : पृ. 45

* * *